

विषय-सूची ।

विषय-सूची।



—:o:—

रङ्गीन चित्रों की सूची।

—:o:—





प्रतीप और गङ्गा ।—पृ० २१५

अट्ठानबे अध्याय

शान्तनु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इधर सब प्राणियों का हित चाहनेवाले महाराज प्रतीप गङ्गा (हरि) द्वार में बहुत दिनों से तप कर रहे थे। इसी बीच में एक दिन गङ्गा देवी लुभानेवाले रूप और गुण से युक्त स्त्री का रूप रक्खे हुए जल के भीतर से निकलकर वेदपाठ कर रहे राजर्षि प्रतीप की दाहनी जाँघ पर बैठ गईं। सर्वाङ्ग-सुन्दरी देवी को देखकर राजा प्रतीप ने कहा—सुन्दरी, तुम क्या चाहती हो ? कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? स्त्री-रूपधारिणी गङ्गा ने कहा—राजन्, मैं कामवश होकर तुमको भजने के लिए आई हूँ। तुम मेरी इच्छा पूरी करो। कामवती स्त्री के त्याग की सज्जनों ने निन्दा की है। प्रतीप ने कहा—सुन्दरी, मैं पराई स्त्री या दूसरे वर्ण की स्त्री को कामवश होकर स्वीकार नहीं कर सकता। यही मेरा धर्मसङ्गत नियम है। गङ्गा ने फिर कहा—महाराज, मुझमें कोई कुलक्षण नहीं है। मैं गमन के अयोग्य या निन्दा के योग्य स्त्री नहीं हूँ। मैं पराई स्त्री भी नहीं, दिव्य कन्या हूँ। मैं अनुरक्त होकर प्रार्थना करती हूँ; मुझे स्वीकार करो। प्रतीप ने कहा—सुन्दरी, तुमने मेरी दाहनी जाँघ पर बैठकर मुझे अपनी इच्छा पूरी करने योग्य नहीं रक्खा। अब यदि मैं तुम्हें स्वीकार करूँगा तो धर्म में बट्टा लगेगा। तुम मेरी दाहनी जाँघ पर आकर बैठ गई हो। यह स्थान बहू-बेटी और बेटे के बैठने का है। स्त्री के बैठने का स्थान तो बाईं जाँघ है। इसलिए तुमको मैं अपनी पुत्रवधू बना सकता हूँ—स्त्री नहीं बना सकता।

गङ्गा ने कहा—राजन्, आप धर्मज्ञ हैं। आपकी इच्छा के अनुसार आपके पुत्र की स्त्री होना मुझे स्वीकार है। आप पर मुझे भक्ति है, इससे मैं इस प्रसिद्ध भरतवंश को ही भजूँगी। भरतवंश के राजा सब नरेशों से श्रेष्ठ समझे जाते हैं; सब राजा इस वंश का मान करते हैं। इस वंश के राजाओं के अपार गुणों को सौ वर्ष तक कहकर भी मैं समाप्त नहीं कर सकती। इस वंश के पुरुषों का उत्कर्ष और साधु-स्वभाव भी प्रशंसनीय है। महाराज, किन्तु मैं इस प्रतिज्ञा से आपकी पुत्रवधू होना स्वीकार करती हूँ कि जो मैं करूँगी उसके सम्बन्ध में आपके पुत्र को कुछ पूछ-ताछ करने का अधिकार न होगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार आपके पुत्र चलेंगे तो मैं सदा उनसे प्रेम करूँगी। श्रेष्ठ सुकृती-प्रिय पुत्रों से तुम्हारे पुत्र को स्वर्ग प्राप्त होगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इतना कहकर गङ्गा देवी अन्तर्द्धान हो गईं। इधर राजा पुत्र के जन्म की राह देखने लगे। अब राजा प्रतीप अपनी रानी-सहित सन्तान की इच्छा से तप करने लगे। बुढ़ापे में प्रतीप के महाभिषक् नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वृद्ध प्रतीप के शान्त (निराश) होने पर उत्पन्न होने के कारण महाभिषक् का दूसरा नाम शान्तनु पड़ा। [वे स्पर्श

करके बूढ़े को जवान कर देते थे, इससे लोग उनको शान्तनु भी कहते थे।] महाराज शान्तनु धर्म-कर्म को पुण्यलोक पाने का उपाय समझकर धर्म का आचरण करने लगे।

शान्तनु के जवान होने पर प्रतीप ने उनसे कहा—बेटा, जब तुम उत्पन्न नहीं हुए थे तब एक दिन एक स्वर्गीय सुन्दरी तुम्हारा हित करने की इच्छा से मेरे पास आई थी। यदि वह अनुपम सुन्दरी युवती देवी, पुत्र की इच्छा से, एकान्त में तुम्हारे पास आवे तो तुम मेरी आज्ञा से उसकी इच्छा पूरी करना। उससे यह कभी न पूछना कि तुम कौन हो; किसकी कन्या हो? वह जो करे उस विषय में भी उससे कुछ पूछ-ताछ न करना और उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी कुछ न कहना।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अपने पुत्र शान्तनु को यों आज्ञा देकर और राजगद्दी पर बिठाकर महाराज प्रतीप वानप्रस्थी हो गये। इन्द्र के समान तेजस्वी शान्तनु राजा होकर राज्य करने लगे। वे प्राय: वनों में शिकार के लिए जाया करते थे। शान्तनु एक दिन मृग और भैंसे आदि जङ्गली जानवरों का शिकार करते हुए सिद्ध-चारण-सेवित गङ्गातट के समीप विचर रहे थे। इसी बीच साक्षात् लक्ष्मी के समान कान्तिवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी, बढ़िया गहने पहने स्त्री उनको वहाँ देख पड़ी। कमल के गाभे के समान रङ्गवाली, सूक्ष्म वस्त्र पहने उस स्त्री को वहाँ अकेली देखकर राजा को बड़ा अचरज हुआ। उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्र-चकोर उस चन्द्रमुखी के रूप की चाँदनी को पीकर किसी तरह तृप्त नहीं हुए। वह सुन्दरी स्त्री रूपवान् तेजस्वी राजा को देखकर उन्हें अपने हृदय का भाव और अनुराग जताने लगी। [वह राजा को एकटक दृष्टि से देखकर मानों रूप-सुधा पीने लगी।]

तब मधुर वाणी से उसे सन्तुष्ट करते हुए राजा शान्तनु ने कहा—सुन्दरी, तुम कौन हो? तुम देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, नाग या मनुष्य, किसकी कन्या हो? तुम क्या कोई दिव्य अप्सरा हो? तुम कोई भी हो, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी भार्य्या होकर मुझे कृतार्थ करो।

निन्नानबे अध्याय

प्रतिज्ञापूर्वक गङ्गा और शान्तनु का विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, मधुर मन्द मुसकान के साथ राजा के कहे इन वचनों को सुनकर और वसुओं से की हुई अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करके सुन्दरी गङ्गा ने कहा—राजन्, मैं रानी होकर आपकी इच्छा पूरी करूँगी और सदा आपकी आज्ञा का पालन करती रहूँगी; किन्तु आपको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी मैं प्रिय या अप्रिय, चाहे जो करूँ, आप न तो मुझे



शान्तनु और गङ्गा का मिलन।—पृ० २१६

: कुछ कठोर वचन ही कह सकेंगे। जब तक आप इस प्रतिज्ञा का
ापके पास रहूँगी। मुझे आप जब किसी काम से रोकेंगे या कठोर
र्ं छोड़कर चली जाऊँगी।

-गुण पर रीझे हुए राजा ने सब मान लिया। अद्वितीय वीर प्रतापी
पाकर वह स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। [राजा शान्तनु उस स्त्री-रत्न को
ो में ले आये।] उसके साथ बड़े सुख से शान्तनु का समय बीतने
तिज्ञा करने के कारण राजा शान्तनु उससे उसके बारे में कुछ भी न
रित्र, आचरण, उदारता और सेवा से शान्तनु बड़े प्रसन्न रहते थे।
ी गङ्गा देवी इस तरह मनुष्यदेह पाकर, इन्द्रतुल्य महाराज शान्तनु के
ज्ञा का पालन करती हुई, सम्भोग, प्रणय-चातुरी, हाव-भाव, नृत्य-गीत
ारञ्जन करने लगीं।

उत्तम स्त्री के गुणों पर मोहित होकर उसके साथ रमण में आसक्त हो
ऋतुएं और वर्ष बीत गये; किन्तु राजा को कुछ भी विचार न था
कि कितना समय बीत गया। ऋतुकाल मे
देवी गङ्गा ने गर्भ धारण किया। इस तरह
क्रमशः अपने माँ-बाप के अनुरूप आठ बालक
उत्पन्न हुए। उत्पन्न हुए बेटे को गङ्गा हर
बार, यह कहकर कि मैं तुम्हें प्रसन्न करने के
लिए ऐसा करती हूँ, गङ्गा के जल में फेक देती
थीं। राजा को गङ्गा का यह काम बहुत
ही अप्रिय था, परन्तु इस डर से कि वे छोड़-
कर चली न जायँ, कुछ न कह सकते थे।
गङ्गा ने सात पुत्र जल में फेक दिये। यथा-
समय आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ। हँसती
हुई गङ्गा [ने उसे भी जब डुबो देना चाहा तब
उनसे दुःखित राजा ने उन] से उस पुत्र की
जान बचाने के लिए कहा—देखो, तुम इस
बालक को न मारो। तुम किसकी कन्या



ा है? तुम क्यों इन पुत्रों की हत्या कर डालती हो? हे पुत्रों की
ुत्र-वध का महापाप हुआ

गङ्गा ने कहा—हे पुत्र की चाह रखनेवाले महाराज, इस तुम्हारे पुत्र को मैं न मारूँगी। इस पुत्र से तुम पुत्र उत्पन्न करनेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ समझे जाओगे। अब तुम्हारे पास रहने की मेरी अवधि बीत गई। प्रतिज्ञा के अनुसार अब मैं नहीं रहूँगी। मैं जह्नु की कन्या हूँ, मेरा नाम गङ्गा है। महर्षिगण सदा मेरी सेवा किया करते हैं। देवताओं का कार्यसिद्ध करने के लिए इतने दिनों तक मैं तुम्हारे पास रही। ये तुम्हारे आठ पुत्र महातेजस्वी आठों वसु थे। वशिष्ठ ऋषि के शाप से इन्हें मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ा। पृथ्वी पर तुम्हारे समान पिता और मेरे समान माता उन्हें नहीं मिल सकती थी। इसी कारण उनकी माता होने के लिए मैंने मनुष्य-शरीर धारण किया था। आठों वसुओं के पिता होकर तुमने अक्षय लोक जीत लिये। वसुओं ने मुझसे यह प्रार्थना कर रक्खी थी कि उत्पन्न होते ही मैं उनमें से हर एक को जल में डुबाकर मनुष्य-योनि और ऋषि के शाप से छुड़ा दूँ। मैंने उनकी यह प्रार्थना मान ली थी। अब आठों वसु महात्मा आपव के शाप से छुटकारा पा गये हैं। तुम्हारा भला हो; अब मैं भी चली। तुम इस महात्मा पुत्र का पालन करना। मैंने वसुओं से जो प्रतिज्ञा की थी सो पूरी कर दी। तुम मेरे इस पुत्र का नाम गङ्गादत्त रखना।

सौ अध्याय

भीष्म को लेकर गङ्गा का स्वर्ग को जाना

शान्तनु ने गङ्गा से पूछा—आपव ऋषि कौन हैं? वसुओं ने कौन अपराध किया था, जिससे लोकेश्वर होने पर भी उनको मनुष्य-शरीर में आना पड़ा? मुझे दिये हुए तुम्हारे इस कुमार ने कौन ऐसा कर्म किया है, जिससे यह मनुष्य-लोक में रहेगा? जाह्नवी, यह सब वृत्तान्त मैं जानना चाहता हूँ, मुझसे कहो।

गङ्गा ने कहा—राजन्, जो पहले वरुणदेव के पुत्र हुए उन्हीं वशिष्ठ मुनि का नाम आपव है। आपव मुनि का पवित्र आश्रम सुमेरु पर्वत के पास है। वहाँ मृग आदि अनेक प्रकार के जङ्गली पशु और तरह-तरह के पक्षी रहते हैं; सब ऋतुओं के फूल सदा खिले रहते हैं। वहाँ स्वादिष्ठ फल-मूल और जल सदा सब जगह सुलभ है। पुण्यात्मा वशिष्ठ मुनि उसी आश्रम में तपस्या कर रहे थे। दक्ष की कन्या सुरभि ने जगत् के उपकार के लिए कश्यप से नन्दिनी नाम की कामधेनु उत्पन्न की थी, वही उन मुनि की हवन-सामग्री देनेवाली गाय थी। मुनियों के निवासस्थान उस पवित्र आश्रम में सब जगह वह नन्दिनी गाय बेखटके विचरती थी।

एक दिन पृथु आदि आठों वसु अपनी स्त्रियों के साथ उस देव-ऋषि-सेवित तपोवन में आकर इधर-उधर विचरते हुए पहाड़ के कुञ्जों में विहार करने लगे इस अवसर में वसुओं

वा कि सब कामधेनुओं में श्रेष्ठ, शील-सम्पत्ति से युक्त, बड़े-बड़े थनोंवाली, ़र पूँछ और खुरोंवाली, दर्शनीय, सब गुणों से युक्त नन्दिनी गाय विचर वसु की स्त्री को बड़ा अचरज हुआ। उसने अपने पति द्यु नाम के वसु । द्यु वसु कामधेनु के गुणों का वर्णन करते हुए कहने लगे—प्रिये, अधिष्ठाता वरुण-पुत्र वशिष्ठ मुनि की यह नन्दिनी गाय है। जो कोई ़ध को पी ले वह स्थिर-यौवन पाकर दस हज़ार वर्ष तक जी सकता है। ते हैं कि राजन्, यह सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी वसु-पत्नी ने अपने तेजस्वी पति -लोक में सत्यवादी बुद्धिमान् राजा उशीनर की कन्या जितवती रूप और जवानी से मनोहर है। वह मेरी सखी है। उसके लिए बछड़े-सहित यह गाय मैं लेना चाहती हूँ। हे पुण्यरूप, आप शीघ्र इस गाय को ले चलिए। मेरी सखी इसका दूध पी लेगी तो बुढ़ापे से और रोगों से बच जायगी तथा मनुष्य-लोक में सदा जवान रहने का सुख भोगेगी। प्यारे, आप यह मेरा प्रिय कार्य अवश्य कीजिए।



द्यौ नाम के वसु, स्त्री के ये वचन सुनकर, उसका प्रिय करने के लिए पृथु आदि अपने भाइयों के साथ उस गाय को हर ले गये। कमलनयनी प्रियतमा के कहने से, अनुराग से अन्धे हो रहे, वसु व का विचार नहीं किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि यह काम करने ़र उससे मेरा अधःपात हो जायगा।

को हर ले गये तब, थोड़ी देर में, फल-मूल लेकर वरुण के पुत्र ऋषिवर ़न्होंने देखा कि वहाँ न नन्दिनी है और न उसका बछड़ा। वन मे ़ाजा, पर वहाँ भी पता न लगा। अन्त को दिव्यदृष्टि से उन्होंने देखा को हर ले गये हैं। तब क्रोध करके उन्होंने शाप दिया कि वसुगण मेरी गाय को ले गये हैं, इससे वे मनुष्ययोनि में उत्पन्न हों। हे भरतश्रेष्ठ, क्रोध करके वसुओं को शाप देकर फिर तप करने लगे

इधर वसुओं को जब वशिष्ठ के शाप देने का हाल मालूम हुआ तब वे फिर वशिष्ठ के आश्रम में आये और अनेक प्रकार से ऋषि को मनाने लगे। परन्तु ऋषि किसी तरह सन्तुष्ट नहीं हुए। सब धर्मों के ज्ञाता ऋषिश्रेष्ठ वरुण के पुत्र ने किसी तरह क्षमा न करके कहा—मैंने पृथु आदि तुम सब वसुओं को शाप दिया है; किन्तु तुम सब लोग एक ही वर्ष के भीतर इस शाप से छुटकारा पा जाओगे। परन्तु ये द्यौ, जिनके कारण तुम सबको शाप मिला है, बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहकर अपने कर्म का फल भोगेंगे। क्योंकि यही असल में अपराधी हैं। मैंने क्रोध के वश होकर जो कह दिया है, वह झूठ नहीं हो सकता। इसके सिवा द्यौ का वंश पृथ्वी पर नहीं चलेगा। ये धर्मात्मा और धर्मशास्त्र के पूरे पण्डित होकर, स्त्री-भोग त्याग करके, पिता का प्रिय और हित करेंगे। वसुओं से यह कहकर महात्मा वशिष्ठ चले गये। इसके उपरान्त सब वसु मेरे पास आये। मुझसे वरदान की प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा—गङ्गा देवी, हममें से जो जन्म ले उसे तुम जल में डुबा देना। मैंने उनसे ऐसा करना स्वीकार कर लिया। राजन्, इस प्रकार वसुओं को शाप से छुड़ाने के लिए ही मैंने इन बालकों को डुबोया है। अब ऋषि के शाप के कारण केवल ये द्यौ नामक वसु बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहेंगे। [यह कुमार सयाना होने पर तुम्हारे पास चला आवेगा और मैं भी तुम्हारे बुलाने से तुम्हारे पास आऊँगी।]

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इतना कहकर और आठवें कुमार को लेकर गङ्गा देवी अन्तर्द्धान हो गईं। वही द्यौ नाम के वसु शान्तनु के पुत्र होकर देवव्रत और गाङ्गेय नाम से प्रसिद्ध हुए। लोग उन्हें पिता से भी अधिक गुणी समझकर उनकी प्रशंसा करते थे।

राजा शान्तनु अन्त को दुःखित होकर अपनी नगरी को चले आये। उन्हीं भरतवंश में उत्पन्न शान्तनु राजा के गुणों का और उनके भाग्यशाली होने का वर्णन करता हूँ। उन्हीं का इतिहास महाभारत नाम से प्रसिद्ध है।

एक सौ एक अध्याय

शान्तनु और भीष्म का चरित। भीष्म की कठिन प्रतिज्ञा और शान्तनु का प्रसन्न होकर उनको वर देना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महात्मा राजा शान्तनु त्रिभुवन में धर्मात्मा और सत्यवादी प्रसिद्ध हुए। देवता और राजर्षिगण उनको विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जितेन्द्रियता, दान, क्षमा, बुद्धि, लोक-लज्जा, धैर्य तेज आदि सद्गुण महाबली पुरुषश्रेष्ठ शान्तनु

में स्थिररूप से सदा विराजमान थे। भरतकुलदीपक राजा शान्तनु धार्मिक, सब गुणों से अलङ्कृत और भरतवंश तथा प्रजा के रक्षक थे। उनकी गर्दन शङ्ख के समान, पराक्रम मस्त हाथी का ऐसा और दोनों कन्धे बैल के ऐसे ऊँचे थे। सब राजलक्षण यथार्थ होकर उनके शरीर में स्थित थे। यशस्वी महाराज के आचरण को देखकर सब लोगों को निश्चय हो गया कि धर्म ही अर्थ और काम से श्रेष्ठ है। महाराज शान्तनु के समान धार्मिक और कोई राजा नहीं हुआ। उनके धर्मभाव को देखकर सब राजाओं ने उन्हें राजराज (सम्राट्) बनाया। उनके शासन के समय में किसी को शोक, भय और चिन्ता नहीं रह गई। सब सदा सुख से सोते और जागते थे। कीर्त्तिशाली शान्तनु के सम्राट् होने पर और भी सब राजा यज्ञ, दान तथा कर्मकाण्ड में तत्पर देख पड़ने लगे। विशेष रूप से सामाजिक नियमों पर ध्यान रखने के कारण शान्तनु आदि भरतवंशी राजाओं के राज्यकाल में चारों वर्णों के धर्म उत्तरोत्तर बढ़ते गये। क्षत्रियगण ब्राह्मणों की, वैश्यगण ब्राह्मण और क्षत्रियों की और शूद्रगण तीनों वर्णों की सेवा करते थे। महाराज शान्तनु कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर में रहकर समुद्र तक सारी पृथ्वी का शासन करते थे। दान, धर्म और तप के संयोग से वे अलौकिक सम्पत्ति और शोभा का आधार थे। राग और द्वेष न होने के कारण वे चन्द्रमा के समान सौम्य थे। धर्मज्ञ, सत्यवादी, सरल, इन्द्रतुल्य राजा शान्तनु का तेज सूर्य के समान था। बल तथा विक्रम में वे वायु के समान थे। कुपित होने पर साक्षात् काल के समान होने पर भी वे पृथ्वी के समान क्षमावान् थे। उनके राज्यकाल में मृग, वराह आदि पशुओं और पक्षियों का शिकार करने की मनाही थी। उनके राज्य में अहिंसारूप ब्राह्मणों का धर्म ही प्रधान धर्म माना जाता था। राजा स्वयं काम-क्रोध-रहित रहकर नम्रता के साथ समान भाव से सब प्राणियों की रक्षा करते थे। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञ में ही वे हिंसा करते थे। अकारण किसी जीव की हिंसा करना उन्हें नापसन्द था। वे दुखी, अनाथ, पशु, पक्षी आदि सबके राजा और पिता थे। शान्तनु के राजराजेश्वर होने पर सब लोग सत्य ही बोलते थे, दानी और धर्मात्मा थे। छत्तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम का सुख भोगकर शान्तनु वन को चले गये।

शान्तनु के आठवें पुत्र, द्यौ नाम के वसु के अवतार, गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न, महात्मा देवव्रत रूप, आचरण, स्वभाव, विद्या आदि सभी बातों में अपने पिता के ही तुल्य हुए। पृथ्वी के और दिव्य, सब प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग उन्हें मालूम था।

एक दिन वीर्यशाली, बलवान् महाराज शान्तनु एक मृग को बाण से घायल करके उसका पीछा करते हुए गङ्गातट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा, नदी का जल बहुत घट गया है। तब वे सोचने लगे आज पहले की तरह गङ्गा की बड़ी धारा नहीं देख पड़ती, बात क्या है? पता लगाने पर उन्हें देख पड़ा कि लम्बा चौड़ा, सुन्दर, इन्द्र-तुल्य एक कुमार जल के प्रवाह को बाणों

से रोके हुए दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर रहा है। उस बालक के इस अम
कार्य को देखकर राजा बहुत ही चकराये। उन्होंने जन्मकाल में ही अपने
देखा था, इस कारण उस कुमार को अपना ही बालक न जान सके। अपने पिता शान्तनु को माया से मोहित करके वह बालक वहीं पर अन्तर्द्धान हो गया।



महाराज शान्तनु ने उस अत्यन्त अद्भुत कार्य को देखकर अन्त को गङ्गा से कहा—देवी, यह बालक, जो अभी अन्तर्द्धान हो गया है, किसका है? मुझे फिर उसे दिखाओ। नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी कपड़े-गहने पहनकर स्त्री-मूर्त्ति धारण करके उस अनेक आभूषणों से अलङ्कृत कुमार का दाहना हाथ पकड़े हुए राजा के आगे आईं। विशेष परिचित होने पर भी शान्तनु उस समय गङ्गा को नहीं पहचान सके। गङ्गा ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, अबसे पहले आपने मेरे गर्भ से जो आठवा
था वह यही बालक है। यह आपका बेटा सब अस्त्र-विद्या सीखकर अच
गया है। राजन्, युद्ध में इसका सामना कोई वीर नहीं कर सकता। इस
अमिल है। आपके इस कुमार ने महर्षि वशिष्ठ से वेद और वेद के
सुर और असुर दोनों को यह प्रिय है। असुरों के गुरु शुक्राचार्य
जानते हैं और देवता-दैत्य सब जिनकी वन्दना करते हैं वे बृहस्पति जो
सब इस बालक ने सीख लिया है। प्रतापी अजेय महर्षि जमदग्नि के
दिव्य अमोघ अस्त्रों को जानते हैं वे सब अस्त्र उन्होंने इसको दे दिये हैं
आपके इस धर्म-अर्थ के पण्डित और अद्वितीय धनुर्द्धर पुत्र को आपके पास
इसे आप ले जाइए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा शान्तनु गङ्गा की आज्ञा से सु
और तेजस्वी उस पुत्र को लेकर देवनगरी अमरावती के समान समृद्धिशाल
आये। उस पुत्र को पाकर शान्तनु ने अपने को कृतार्थ समझा। उन्हें
इतने दिनों के बाद अब मैं सचमुच समृद्धिशाली हुआ अब पुरुवंश के

: महात्मा पुत्र को गद्दी पर बिठाकर युवराज बना दिया। शान्तनु के ने सच्चरित्र और सद्गुणों के कारण पिता को, पुरवासियों को और परम पराक्रमी महाराज शान्तनु निश्चिन्त होकर पुत्र के साथ सुख :स तरह चार वर्ष बीते।

दिन राजा शान्तनु यमुना-किनारे के वन में पहुँच गये। वहाँ एक ही नाक में पहुँची। जिधर से वह सुगन्ध आ रही थी उसी ओर आगे बढ़ने पर राजा को एक देवकन्या सी सुन्दरी देख पड़ी। राजा ने उस कमलनयनी कन्या से पूछा—सुन्दरी, तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? किसलिए इस वन में आई हो? उस युवती ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, मैं दाशराज की बेटी हूँ। उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ नाव खेकर बटोहियों को इस पार से उस पार पहुँचाती हूँ।



उसके शरीर से निकल रही दिव्य गन्ध को सूँघकर और उसके अनुपम रूप-लावण्य और दिव्य कान्ति को निहारकर राजा शान्तनु उस पर रीझ गये। उन्होंने उस कन्या के पिता निषादराज के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की और पूछा कि तुम मेरे साथ अपनी बेटी का ब्याह करने के लिए राज़ी हो या नहीं? दाश-कन्या के जन्म के समय ही मैंने निश्चय कर लिया था कि किसी देने में मुझे 'नाहीं' नहीं है; किन्तु मैंने एक पण कर रक्खा राजन्, आप सत्यवादी हैं। यदि आप मेरी इस कन्या को भार्या प्रतिज्ञा कीजिए। मैं आपको अपनी कन्या दूँगा। आप ऐसा नकता है? राजा ने पूछा—तुम्हारा क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कर्त्तव्य जान पड़ेगा वह करूँगा। यदि मेरी शक्ति के बाहर होगा ने कहा—राजन्, इस भार्या के गर्भ से जो बेटा आपके हो वही ठे आप और किसी रानी के पुत्र को राजा न बना सकेंगे

राजा कामदेव के दाह से विह्वल हो रहे थे, तो भी वे दाशराज की
कर सके। उस सुन्दरी की सूरत को बिसूरते हुए काम-वेदना से विह्वल र
को लौट आये। उसी दिन से शोक में मग्न राजा की दशा शोचनीय हो
एक दिन देवव्रत ने पिता की यह दशा देखकर उनसे कहा—पिता
आपका किसी प्रकार का अमङ्गल नहीं देख पड़ता। सभी राजा आप
फिर आप क्यों ऐसे शोकाकुल, दुःखित और चिन्तित देख पड़ते हैं? जान पड़ता है, आप मेरे ही बारे में कुछ चिन्ता किया करते हैं। महाराज, आप मुझसे कुछ कहते नहीं। मैं देखता हूँ, आप दिन-दिन पीले पड़ते जाते हैं, आपकी कान्ति मलिन और अङ्ग शिथिल होते जाते हैं। घोड़े पर चढ़कर अब आप घूमने नहीं निकलते। मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसी कौन सी पीड़ा आपको पहुँच रही है। मैं उसको दूर करने का उपाय करूँगा।

पुत्र के वचन सुनकर शान्तनु ने कहा—पुत्र, मैं सचमुच इन दिनों चिन्ता से व्याकुल हो रहा हूँ। उसका कारण भी कहता हूँ, सुनो। बेटा, हमारे इस बड़े भारी भरतवंश में मेरे केवल एक तुम्हीं पुत्र हो। तुम सदा तत्परता के सा
यश की इच्छा में लगे रहते हो। बेटा, मैं यह देखकर चिन्ता किया करत
का घड़ी भर का भी ठिकाना नहीं। यदि किसी तरह, परमेश्वर न करे,
आ पड़े, तो हमारा वंश ही मिट जायगा। किन्तु तुम अकेले ही सौ पु
कारण मैं फिर व्याह करना नहीं चाहता। वंश-रक्षा के लिए केवल यही
कि तुम सदा सब प्रकार कुशल से रहो। धर्म के जानकारों का कहना है
पुत्र है वह पुत्र-हीन के बराबर है। यह सच है कि अग्निहोत्र, वेद-पाठ
द्वारा विद्या-प्रचार आदि पुण्य कार्यों से अक्षय फल मिलता है; किन्तु इनमे
उत्पन्न करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं। केवल मनुष्य नहीं
पुत्र को मङ्गल का मूल समझते हैं इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं कि

स्वर्ग प्राप्त होता है। सब पुराणों के मूल और प्राचीन देवताओं के प्रमाण-स्वरूप वेद में भी इसके अनेकानेक प्रमाण पाये जाते हैं। पुत्र, तुम वीर, क्रोधी और नित्य युद्ध का व्यसन रखते हो। युद्ध में ही तुम्हारी मृत्यु की विशेष सम्भावना है। इसी कारण मैं चिन्तित रहता हूँ। पुत्र, इसके सिवा और कुछ मेरी चिन्ता का कारण नहीं है।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, असाधारण बुद्धिमान् देवव्रत ने राजा से उनके दुःख और चिन्ता का कारण सुनकर घड़ी भर सोचा। फिर पिता के हितचिन्तक बूढ़े मन्त्री के पास जाकर उससे उन्होंने पिता की चिन्ता का कारण पूछा। मन्त्री ने गन्धवती पर राजा के मोहित होने का और उस कन्या के देने में दाशराज की प्रतिज्ञा का सब हाल विस्तार से कह सुनाया। तब बूढ़े क्षत्रियों को साथ लेकर देवव्रत उस दाशराज के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने पिता के लिए दाशराज से उसकी कन्या माँगी। दाशराज ने पहले विधिपूर्वक पूजा करके देवव्रत की अभ्यर्थना की। फिर जब क्षत्रियों के साथ देवव्रत सुखपूर्वक बैठे तब दाशराज ने कहा—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, आप सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और महाराज शान्तनु के वंश को चलानेवाले हैं। आप जब स्वयं इस सम्बन्ध के लिए कहने आये हैं तब मैं और क्या कह सकता हूँ! ऐसे प्रशंसनीय और प्रार्थनीय सम्बन्ध को अस्वीकार कर देने से साक्षात् इन्द्र को भी पछतावा होगा। यह सुन्दरी सत्यवती भी आप लोगों के ऐसे गुणी आर्य पुरुष के ही वीर्य से उत्पन्न हुई है। उन महात्मा ने भी मुझसे बारम्बार आपके पिता के गुणों का बखान करके यही कहा था कि धर्मात्मा महाराज शान्तनु ही सत्यवती के योग्य वर हैं। राजर्षि असित ने भी यह कन्या मुझसे माँगी थी, परन्तु मैंने उनको देना स्वीकार नहीं किया। मैं कन्या का पिता हूँ, इसलिए आपसे कुछ कहता हूँ; क्षमा कीजिएगा। आपके पिता को यह कन्या देने में मुझे 'बलवान् से शत्रुता' का बड़ा भारी दोष देख पड़ता है। इस कन्या के जो पुत्र होगा वह यदि राज्य के लिए आपसे झगड़े तो कुछ असम्भव नहीं। ऐसी दशा में आपकी शत्रुता होने से उसका भला नहीं हो सकता। जिसके आप शत्रु हों वह, चाहे गन्धर्व या असुर भी हो, बहुत दिन तक नहीं जी सकता। बस, एक यही दोष है। आपके पिता को कन्या देने के बारे में मुझको यही एक सोच-विचार है।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, गङ्गा के पुत्र महात्मा देवव्रत ने यह सुनकर सब राजाओं के आगे प्रतिज्ञापूर्वक कहा—दाशराज, जो तुम्हारी इच्छा है उसे मैं पिता की प्रसन्नता के लिए पूरी करूँगा। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि इस तुम्हारी कन्या के जो पुत्र होगा वही हमारा राजा होगा। मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाला पुरुष पृथ्वी पर न हुआ है और न होगा। महाराज, देवव्रत की यह कठिन प्रतिज्ञा सुनकर, राज्य-लालसा से और भी दुष्कर प्रतिज्ञा कराने के लिए, ने कहा आप धर्मात्मा और सब लायक हैं आप महाराज

शान्तनु की ओर से आये हैं, और मैं भी आपको इस कन्या के देने के बारे में अधिकार देता हूँ। आप जो चाहें करें; कोई भी आपके किये को दुलख नहीं सकता। किन्तु इस बारे में मुझको और भी कुछ कहना है; कन्या के ऊपर स्नेह होने के कारण उसकी भलाई के लिए जो मैं और कुछ कहता हूँ वह भी सुनिए। हे सत्यधर्मपरायण, आपने सत्यवती के पुत्र के लिए इन राजाओं के सामने जो प्रतिज्ञा की है वह आप ऐसे पुत्र के योग्य ही है। उसके बारे में मुझे संशय नहीं है किन्तु आपके जो पुत्र होगा वह, बहुत सम्भव है, आपकी इस प्रतिज्ञा का पालन न करे। यह मुझको बड़ा भारी सन्देह है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, दाशराज का मतलब समझकर पिता का प्रिय करने के लिए सत्यधर्म-परायण देवव्रत ने कहा—दाशराज, मैं इन सब राजाओं के सामने यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ, सुनो। अब उन्होंने राजाओं को सुनाकर कहा कि हे नरपतियो, मैं राज्य छोड़ने की पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब दाशराज को यह सन्देह हुआ है कि मेरे जो पुत्र होगा वह कदाचित् मेरी इस प्रतिज्ञा का पालन न करे। इस सन्देह को भी दूर करने के लिए यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आज से जन्म भर ब्रह्मचारी रहूँगा—ब्याह ही न करूँगा। अपुत्र होकर मरने पर भी मुझे अक्षय स्वर्गलोक मिलेगा।

राजन्, देवव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर अचरज और हर्ष से दाशराज के रोमाञ्च हो आया। उसने कहा—मैं अपनी कन्या आपके पिता को देता हूँ। उस समय आकाशमण्डल से अप्सरा, देवता और ऋषिगण देवव्रत के ऊपर फूलों की वर्षा करके कहने लगे—"ये शान्तनु के पुत्र 'भीष्म' हैं।" अब भीष्म ने यशस्विनी सत्यवती से कहा—माता, रथ पर चढ़िए। चलो, अपने घर को चलें।

दाशराज की कन्या सत्यवती को लेकर भीष्म रथ पर चढ़कर हस्तिनापुर में आये। उन्होंने सत्यवती को पिता के हवाले कर दिया। भीष्म के इस दुष्कर कर्म को देखकर सब राजा उनकी प्रशंसा करते हुए एक स्वर से कहने लगे—"ये भीष्म हैं।" महाराज शान्तनु ने भी प्रसन्न होकर भीष्म को यह वर दिया कि तुम जब चाहोगे तभी तुम्हारी मृत्यु होगी; तुम्हारी इच्छा हुए बिना मृत्यु न होगी।

एक सौ दो अध्याय

शान्तनु का सत्यवती से ब्याह। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य का जन्म। शान्तनु और उनके पुत्र चित्राङ्गद का मरण। विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, ब्याह हो जाने पर शान्तनु ने रूप-यौवन से पूर्ण सुन्दरी सत्यवती को रनिवास में रक्खा कुछ दिन के बाद शान्तनु के सत्यवती के गर्भ से पुरुषश्रेष्ठ

पराक्रमी, महावीर चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य जवान भी न होने पाये थे कि महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गई। तब सत्यवती की आज्ञा से भीष्म ने चित्राङ्गद को राजगद्दी पर बिठाया। चित्राङ्गद ने अपने पराक्रम से सब राजाओं को जीतकर वश में कर लिया। वे संसार में किसी मनुष्य को अपने समान न मानकर सबको तुच्छ दृष्टि से देखने लगे। सुर, असुर, मनुष्य आदि सबने चित्राङ्गद से हार मान ली।

इसी बीच महाबली चित्राङ्गद नाम के एक गन्धर्वराज ने राजा चित्राङ्गद पर चढ़ाई की। कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के किनारे बलवान् उत्साही दोनों वीर तीन वर्ष तक घोर युद्ध करते रहे। शस्त्रों की वर्षा करते लड़ते-लड़ते मायावी गन्धर्वराज माया करके युद्ध करने लगा। राजा चित्राङ्गद माया न जानते थे; इसी से चित्राङ्गद गन्धर्व के हाथों मारे गये। वीर चित्राङ्गद को मारकर वह गन्धर्व स्वर्ग को चला गया।

महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ चित्राङ्गद के मरने पर भीष्म ने यथोचित विधि से उनका क्रिया-कर्म कराया और फिर नाबालिग़ विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बिठाया। राजा विचित्रवीर्य भक्ति और सम्मान के साथ, धर्मशास्त्र के ज्ञाता भीष्म की आज्ञा के अनुसार, परम्परा से चले आ रहे अपने पूर्वजों का राज्य करने लगे। भीष्म भी धर्मपूर्वक उनकी देख-रेख और रक्षा करने लगे।

एक सौ तीन अध्याय

स्वयंवर से कन्या हरने के लिए भीष्म का काशी जाना। कन्या-हरण।
राजाओं का पराभव। विचित्रवीर्य की मृत्यु

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, चित्राङ्गद मारे गये और विचित्रवीर्य नाबालिग़ थे; इस कारण सत्यवती की आज्ञा से भीष्मजी आप ही राज्य की रक्षा करने लगे। धीरे-धीरे विचित्रवीर्य जवान हो चले। तब भीष्म ने उनका व्याह करने का विचार किया। इसी समय सुन पड़ा कि काशी के राजा की अप्सरा-सदृश सुन्दरी तीन कन्याओं का स्वयंवर होनेवाला है। यह सुनकर, माता की आज्ञा लेकर, भीष्म अकेले ही रथ पर चढ़कर काशीपुरी को चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, स्वयंवर की सभा में सब स्थानों से आये हुए राजा लोग उपस्थित हैं और तीनों कन्याएँ भी मौजूद हैं। अब एक-एक करके सब आये हुए राजाओं के गुणों और नामों का वर्णन किया जाने लगा। स्वयंवर में अकेले बूढ़े भीष्म को देखकर कन्याएँ मन में कुछ डरीं और यह सोचकर वहाँ से हटने को हुईं कि "यह बूढ़ा, धर्मात्मा,—जिसके झुर्रियाँ पड़ गई हैं—निर्लज्ज यहाँ किसलिए आया है।" संसार को यह झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला अपनी क्या सफ़ाई देगा? लोग इसे झूठमूठ ब्रह्मचारी कहते हैं।—नीच राजा लोग यही बातें करते हुए हँसने लगे।



वैशम्पायन कहते हैं—क्षत्रियों की उक्त बातें सुनकर भीष्म अप्रसन्न बलपूर्वक उन तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बिठाकर मेघ के समान राजाओं को सुनाकर कहा—गुणी पात्र को बुलाकर यथाशक्ति गहने और ध को पण्डित लोग 'ब्राह्म' विवाह कहते हैं। कुछ लोग एक गाय और एक हैं यह 'आर्ष' विवाह है। कुछ लोग धन लेकर कन्या देते हैं। यह 'अ कुछ लोग ज़बर्दस्ती कन्या को हर ले जाकर विवाह करते हैं। यह 'राक्षस' लोग कन्या को राज़ी करके उसकी सम्मति से विवाह करते हैं। यह ' कुछ लोग असावधान कन्या को छल से ले जाकर विवाह करते हैं। यह 'पैशाच' विवाह है। कुछ लोग दाता के यहाँ आप जाकर उससे कन्या को माँगकर विवाह करते हैं। यह 'प्राजापत्य' विवाह है। कुछ लोग यज्ञ में कन्या ग्रहण करते हैं। यह 'दैव' विवाह है। इनमें क्षत्रिय के लिए राक्षस विवाह ही श्रेष्ठ कहा गया है। परन्तु क्षत्रिय लोग स्वयंवर की प्रशंसा करते हैं और उसमें जाते हैं। धर्म जाननेवाले लोग शत्रु-पक्ष को परास्त करके कन्या को हर लाकर उससे ब्याह करने को ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। इस कारण हे नरपतियो, बलपूर्वक हरे लिये जाता हूँ। मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ; यदि शक्ति हो तो करो। अभी जय या पराजय पाओगे।



महाबली शान्तनु-नन्दन भीष्मजी काशी के राजा और अन्यान्य राज और उन तीनों कन्याओं को रथ पर बिठाकर, सबको युद्ध के लिए ललकार दिये। तब सब क्षत्रिय क्रोध से अपने ओठ चबाते और ताल ठोंकते हु खड़े हुए शीघ्र चलने के कारण दौड़ने के वेग से बहुतों के कवच और ग

पड़े। ऐसा जान पड़ा, मानों आकाशमण्डल से तारागण गिर रहे हैं। चारों ओर सभा में कोलाहल होने लगा। सारथियों ने उत्तम घोड़े जोतकर रथों को तैयार किया। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये सब नरेश उन रथों पर चढ़कर बड़े वेग से कुरुश्रेष्ठ भीष्म के पीछे दौड़े। क्रोध के कारण सबकी भौंहें टेढ़ी हो गई और आँखें लाल हो आईं।

अब अकेले भीष्म के साथ उन असंख्य राजाओं का अद्भुत घोर सङ्ग्राम छिड़ गया। राजाओं ने एक साथ हज़ारों बाण भीष्म के ऊपर चलाये। किन्तु गङ्गा-नन्दन ने अपने अनेक तीक्ष्ण बाणों से राह में ही उन बाणों को काटकर गिरा दिया। तब सब राजा लोग चारों ओर से भीष्म को घेरकर उन पर बाण बरसाने लगे। ऐसा जान पड़ा मानों बहुत से मेघ किसी पर्वत के शिखर पर पानी बरसा रहे हैं। भीष्म ने पहले अपने बाणों से इस बाण-वर्षा को रोक-कर फिर हर एक राजा के तीन-तीन बाण मारे। तब हर एक राजा ने कुपित होकर भीष्म को पाँच-पाँच बाण मारे। भीष्म ने फिर उन बाणों की वर्षा को निष्फल करके दो-दो बाण हर एक को मारे। बाण, शक्ति आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से समरभूमि बिछ गई। वह युद्ध प्राचीनकाल के देवासुर-संग्राम की तरह क्रमशः ऐसा भयानक हो उठा कि केवल देखने के लिए आये हुए वीरों के भी हृदय काँप उठे। अद्वितीय धनुर्द्धर शान्तनु-पुत्र महाबली भीष्म समरभूमि में हज़ारों शत्रुओं के धनुष, ध्वजा, कवच और सिर काट-काटकर गिराने लगे। उनके हाथ की फुर्ती, अपने को बचाना और अन्यान्य अलौकिक विचित्र कामों को देखकर सब राजा लोग, शत्रु होने पर भी, उनकी बड़ाई करने लगे। अब देखते ही देखते उन असङ्ख्य नरपतियों को जीतकर वीरश्रेष्ठ कुरुकुल-तिलक भीष्मजी उन कन्याओं-सहित अपने नगर की ओर चले।

अन्त को अमित-बलवान् महारथी राजा शाल्व उन कन्याओं को छीनने के इरादे से युद्ध करने को भीष्म के पीछे चला और उनको युद्ध करने के लिए ललकारने लगा। जान पड़ा मानों कोई महाबली गजराज हथिनी के लिए दूसरे गजराज पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा जा रहा है। तब क्षत्रिय-धर्म के प्रतिपालक शत्रुदमन पुरुषश्रेष्ठ महारथी भीष्म शत्रु के ललकारने से क्रोध के मारे आग की तरह प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने अपना रथ लौटा दिया। उनके मत्थे में बल पड़ गये। निर्भय भीष्म शाल्व से भिड़ने को लौट पड़े। और-और राजा लोग अलग खड़े होकर भीष्म और शाल्व का युद्ध देखने लगे। ऋतुमती गाय के लिए जैसे दो साँड़ भिड़ जायँ वैसे ही वे दोनों वीर गरजते हुए एक दूसरे के सामने डट गये। शाल्व ने फुर्ती के साथ पहले ही सैकड़ों-हज़ारों बाणों की वर्षा भीष्म पर कर दी। यह देखकर सब राजा लोग अचरज के मारे "वाह-वाह" कहकर शाल्व की बड़ाई करने लगे। शाल्व को दर्शक-क्षत्रियों के दिये साधुवाद को सुनकर भीष्म कोप के मारे काँप उठे। उन्होंने शाल्व से "खड़ा रह, खड़ा रह" कहकर सारथी से कहा—इस राजा के पास तुरन्त मेरा रथ ले चल पक्षिराज गरुड़

जिस तरह साँप को मार डालते हैं उसी तरह मैं इसको मार डालूँगा । शास्त्र का प्रयोग करके बाण चलाया । उस बाण से शाल्व के रथ के फिर शाल्व ने भी अस्त्र चलाये । उन अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट के सारथी को भी मार डाला । शाल्व दूसरे रथ पर चढ़कर आया । फिर उसके रथ के घोड़ों को मार डाला । इसी बीच में झपटकर भीष्म लिया; किन्तु हारे हुए शाल्व की हत्या न करके उसे छोड़ दिया ।

इस तरह हारकर शाल्व अपने नगर को चला गया और वहाँ ध का पालन करने लगा । और-और जो राजा स्वयंवर देखने को आये थे राजधानी को लौट गये ।

योद्धाओं में श्रेष्ठ भीष्मजी इस प्रकार राजाओं को हराकर और क हस्तिनापुर को चले । उस समय भीष्म के भाई विचित्रवीर्य अपने पिता तरह प्रजा का पालन कर रहे थे । गङ्गा के पुत्र पराक्रमी भीष्मजी, वन, न से पूर्ण बीहड़ मैदानों को लाँघते हुए, काशिराज की तीनों कन्याओं को पतोहू, छोटी बहन और लड़की की तरह स्नेह-सहित साथ लिये हस्तिनापुर पहुँचे । भाई के हितैषी भीष्म ने वे तीनों कन्याएँ लाकर युवक विचित्रवीर्य को दे दीं । इसके बाद माता सत्यवती से सलाह लेकर वे उन कन्याओं के साथ विचित्र-वीर्य के व्याह का उद्योग करने लगे ।



तब काशिराज की बड़ी लड़की अम्बा ने भीष्म से हँसकर कहा—आप धर्मज्ञ हैं, इसी से निवेदन करती हूँ । मैं पहले स्वयंवर में सौभपति महाराज शाल्व को मन ही मन अपना पति मान चुकी हूँ । इस कारण वही मेरे स्वामी हैं । मेरे पिता का भी यही विचार था । इसलिए अब वही कीजिए, जि हो । अम्बा के ये वचन सुनकर भीष्म सोचने लगे कि इस बारे में क्या क को वेदज्ञ ब्राह्मणों से सलाह करके कर्त्तव्य निश्चित कर भीष्म ने अम्बा

तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो। अम्बा के चले जाने पर काशिराज की अम्बिका और अम्बालिका नाम अन्य दो कन्याओं के साथ भीष्म ने विचित्रवीर्य का ब्याह कर दिया। धर्मात्मा विचित्रवीर्य की जवानी का आरम्भ था। उसी समय उनको सर्वाङ्गसुन्दरी, भरे हुए स्तनोंवाली, विशाल नितम्बोंवाली और अलकावलियों से शोभित मुखचन्द्रवाली दो जवान रानियाँ मिलीं। फिर क्या था, वे विषय-भोग में डूब गये। शुभ लक्षणोंवाली दोनों रानियाँ भी अपनी रुचि के अनुरूप वर पाकर राजा को अधिक प्यार करने लगीं। अश्विनी-कुमार-सदृश रूपवान् और देवताओं की ऐसी शक्ति रखनेवाले विचित्रवीर्य ने दोनों रानियों का मन हर लिया। इस तरह सात वर्ष बीत गये। अन्त को अत्यन्त भोग करने से विचित्रवीर्य बहुत शीघ्र क्षीण हो गये। उनको क्षयी रोग हो गया। हितैषियों ने और बहुत से प्रसिद्ध वैद्यों ने आरोग्य करने के लिए बहुत कुछ चेष्टा की; परन्तु किसी तरह कुछ न हुआ। दिन के अन्त में सूर्य के समान, विचित्रवीर्य चल बसे।

धर्मात्मा भीष्म को अपने भाई की अकाल-मृत्यु से बड़ा शोक हुआ। अन्त को सत्यवती की आज्ञा से भीष्म ने कुरुवंश के प्रधान लोगों के साथ पुरोहित के द्वारा विधिपूर्वक भाई की अन्त्येष्टि-क्रिया कराई।

एक सौ चार अध्याय

सत्यवती का भीष्म से विचित्रवीर्य की स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहना; भीष्म का स्वीकार न करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा विचित्रवीर्य की यों मृत्यु हो जाने पर सत्यवती को घोर पुत्र-शोक हुआ। बेटे का सब क्रिया-कर्म करा चुकने पर सत्यवती ने दोनों बहुओं को समझाकर धैर्य दिया। अब पिता-माता के वंश और धर्म की रक्षा के लिए एक दिन सत्यवती ने भीष्म से कहा—पुत्र, तुम धर्म के जानकार हो। कुरुवंश में उत्पन्न धर्मात्मा यशस्वी शान्तनु का पिण्ड, कीर्ति और वंश तुम्हीं तक रह गया है। जैसे अच्छे कामों से स्वर्ग मिलना निश्चित है, सत्य बोलने से आयु का बढ़ना निश्चित है, वैसे ही तुममें साङ्गोपाङ्ग धर्म का होना निश्चित है। तुम संक्षेप से और विस्तार से धर्म के रूप को जानते हो—अनेक श्रुतियों और वेदाङ्गों के यथार्थ तत्त्व को समझे हुए हो। तुम्हारी धर्मनिष्ठा और सदाचार को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। विपत्ति के समय तुम शुक्राचार्य और अङ्गिरा ऋषि के समान स्थिर बुद्धि से उपयुक्त उपाय सोच सकते हो। मुझको तुम पर पूरा विश्वास है, इसी से एक काम

करने के लिए मैं तुमको आज्ञा देती हूँ। मैं जो करने के लिए कहती हूँ उसे सुनकर अस्वीकार न करना। हे पुरुषश्रेष्ठ, मेरा पराक्रमी पुत्र और तुम्हारा प्यारा भाई बाल्यावस्था में ही स्वर्गवासी हो गया है। उसके कोई सन्तान नहीं है। काशिराज की कन्या ये दोनों उसकी रानियाँ पुत्र की इच्छा रखती हैं। ये दोनों रूपवती और गुणवती हैं। इसलिए मेरी आज्ञा के अनुसार, भरतवंश की रक्षा के लिए, तुम इनके गर्भ से पुत्र उत्पन्न करके धर्म का पालन करो। [अथवा] आप राजगद्दी पर बैठो, विवाह करो। अनर्थक अपने पुरखों को नरक में न डालो।

महाराज, सत्यवती ने इस तरह कहा, और अन्य बन्धु-बान्धवों ने भी ऐसा करने के लिए ज़ोर दिया। सबका कहना सुनकर धर्मात्मा भीष्म ने कहा—माता, आपने जिस धर्म का उल्लेख किया वह निस्सन्देह श्रेष्ठ है। किन्तु पुत्र उत्पन्न करने के सम्बन्ध में जो प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ उसे आप अच्छी तरह जानती हैं। आपके बदले में जो वचन मैंने आपके पिता को दिया है उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। आज फिर आपके आगे कहता हूँ कि मैं त्रिलोकी के राज्य को, देवलोक के राज्य को, और उससे भी बढ़कर यदि कुछ हो तो उसे भी सत्य के लिए छोड़ दूँगा; पर सत्य को नहीं छोड़ सकता। पृथ्वी गन्धगुण को, जल रसगुण को, ज्योति रूप-गुण को, वायु स्पर्शगुण को, सूर्य अपने तेज को, धूमकेतु अपनी गर्मी को, चन्द्रमा अपनी शीतलता को, आकाश अपने शब्दगुण को, इन्द्र अपने विक्रम को और धर्मराज चाहे अपने धर्म को छोड़ दें; परन्तु मैं कभी सत्य को छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता।

परमतेजस्वी सत्यवादी धर्मज्ञ पुत्र के ये वचन सुनकर सत्यवती ने कहा—हे सत्यव्रत, तुम्हारी सत्य-निष्ठा को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम चाहो तो अपने [तपोबल और] तेज से त्रिलोकी और उसके अन्तर्गत सब पदार्थों की सृष्टि कर सकते हो। मेरे लिए तुम जो सत्य प्रतिज्ञा कर चुके हो वह भी मुझे याद है। परन्तु इस समय आपत्काल के धर्म को देखकर पुरखों का वंश चलाओ। तुमको इस समय वही काम करना चाहिए जिसमें वंशलोप न हो, धर्म की हानि न हो और इष्टमित्र तथा स्वजनों को भी हर्ष हो।

पुत्र-शोक से पीड़ित माता के धर्म-विरुद्ध वाक्य सुनकर भीष्म ने फिर कहा—रानी, धर्म को देखो। अधर्म से हम सबका नाश न कराओ। सत्य को छोड़नेवाला क्षत्रिय शास्त्र में निन्दित कहा गया है। पृथ्वी पर महात्मा शान्तनु का वंश बनाये रखने के लिए जिस सनातन क्षत्रिय-धर्म का आचरण करना होगा उसे मैं कहता हूँ। उसे सुनकर लोकाचार के अनुसार आपद्धर्म के ज्ञाता विज्ञ ब्राह्मणों और पुरोहितों से सम्मति माँगो।

एक सौ पाँच अध्याय

दीर्घतमा ऋषि का उपाख्यान

भीष्म ने कहा—पूर्व समय में जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने कुपित होकर बाप की हत्या का बदला चुकाने के लिए चढ़ाई करके परशु से सहस्रबाहु अर्जुन के सब हाथ काट डाले और सिर काट गिराया। इतने पर भी उनका क्रोध नहीं शान्त हुआ। वे रथ पर चढ़कर पृथ्वी-पर्यटन करते हुए सब क्षत्रियों का नाश करने लगे। इस प्रकार दिव्य अस्त्र-शस्त्र चलाकर इक्कीस बार घूमकर परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया। क्षत्रियवंश निर्मूल होने पर क्षत्रिय-पत्नियों ने वेद के जानकार ब्राह्मणों के द्वारा [नियोग-धर्म के अनुसार] अपने में पुत्र उत्पन्न कराये थे। वेद में कहा गया है कि जो व्यक्ति पाणि-ग्रहण करता है उसके क्षेत्र (स्त्री) में उत्पन्न सन्तान उसी की है। इस कारण वे ब्राह्मणों के वीर्य से क्षत्रिय की पत्नियों में उत्पन्न सन्तान ब्राह्मण न होकर क्षत्रिय ही हुए। रानीजी, इसी प्रकार क्षत्रियों का वंश फिर चला है। मैं इस विषय में और भी एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ—सुनो।

पूर्व समय में उतथ्य नाम के एक बुद्धिमान् ऋषि थे। उनकी परम सुन्दरी स्त्री का नाम ममता था। एक दिन उतथ्य के छोटे भाई देव-पुरोहित महातेजस्वी बृहस्पति ने ममता से आकर रति की प्रार्थना की। तब ममता ने कहा—देवर, तुम्हारे बड़े भाई के सहवास से मैं गर्भवती हो गई हूँ। उतथ्यजी की सन्तान परमतेजस्वी है; उसने गर्भ में ही षडङ्ग वेद पढ़ लिया है। मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि तुम्हारा भी वीर्य निष्फल नहीं हो सकता। तुम्हारे भी वीर्य से पुत्र उत्पन्न होगा। किन्तु गर्भाशय में एक के सिवा दूसरे बालक के रहने को स्थान नहीं है। इसलिए इस समय तुम अपना यह विचार छोड़ दो।

बुद्धिमान् बृहस्पति सब समझने पर भी कामवश अपने मन को न रोक सके। ममता की इच्छा न रहने पर भी अपनी इच्छा से बृहस्पति ने उसके साथ रमण करना चाहा। तब गर्भ में स्थित बालक ने बृहस्पति से कहा—चाचाजी, काम के अधीन होकर आप मैथुन न करें। यहाँ बहुत ही कम स्थान है। भगवन्, मैं पहले यहाँ आ चुका हूँ। आपका वीर्य अमोघ है। इस कारण वीर्यपात करके मुझे पीड़ा न पहुँचाइए। किन्तु कामोन्मत्त बृहस्पति ने इस पर कुछ ध्यान न देकर ममता से रमण किया।

तब वीर्यपात के समय गर्भस्थ बालक ने अपने दोनों पैरों से गर्भाशय के द्वार को बन्द कर दिया। वीर्य यथास्थान पर न जाकर बाहर गिर पड़ा। इस पर बृहस्पति ने कुपित होकर गर्भस्थ उतथ्य-पुत्र को डाँटकर शाप दिया—तुमने सब प्राणियों के प्रिय ऐसे समय पर मुझ से ऐसा कहा, इसलिए दीर्घतम (सदा के लिए अन्धकार) को प्राप्त होकर तुम जन्म लोगे,

इस अपराध से तुम जन्म भर अन्धे रहोगे। बृहस्पति के शाप से उतथ्य के पुत्र अन्धे उत्पन्न हुए। उनका नाम दीर्घतमा पड़ा। वेदज्ञ परमज्ञानी महर्षि दीर्घतमा ने विद्या के बल से प्रद्वेषी नाम की परम सुन्दरी एक युवती ब्राह्मण-कन्या के साथ अपना ब्याह कर लिया। उनके गौतम आदि कई पुत्र हुए। अन्त को धर्मात्मा, महात्मा, वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता दीर्घतमा ने सुरभी के पुत्र से गोधर्म (प्रकाश-मैथुन) सीखकर उस पर श्रद्धा रखकर निःशङ्क भाव से कुल-वृद्धि के लिए उसी का आचरण किया। इस प्रकार दीर्घतमा को समाज की मर्यादा का उल्लङ्घन करते देखकर तपोवन-वासी अन्यान्य ऋषियों को बड़ा क्रोध आया। वे आपस में कहने लगे—ये दीर्घतमा सदाचार को छोड़कर समाज की मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं। लोकलज्जा से हीन होने के कारण ये आश्रम में रहने लायक़ नहीं। आओ, हम लोग पापी निर्लज्ज दीर्घतमा को छोड़ दें।

दीर्घतमा के कई बेटे थे, पर खाने का ठिकाना न था। इससे दीर्घतमा की स्त्री भी उनसे सन्तुष्ट नहीं थी। वह भी उनसे द्वेष रखती थी। दीर्घतमा ने खीझकर एक दिन अपनी स्त्री से पूछा—तुम मुझसे मन में द्वेष क्यों रखती हो? प्रद्वेषी ने कहा—स्वामी स्त्री को खिलाता-पिलाता, पहनाता-उढ़ाता है, भरण करता है, इसी से वह भर्ता कहलाता है। वह पालन भी करता है, इसी से उसे पति कहते हैं। तुम जन्म से ही अन्धे हो; मेरा भरण-पोषण और पालन तो दूर रहा, मैं ही उलटे तुम्हारा और तुम्हारे बेटों का पालन-पोषण करती हूँ। किन्तु अब मुझसे यह न हो सकेगा।

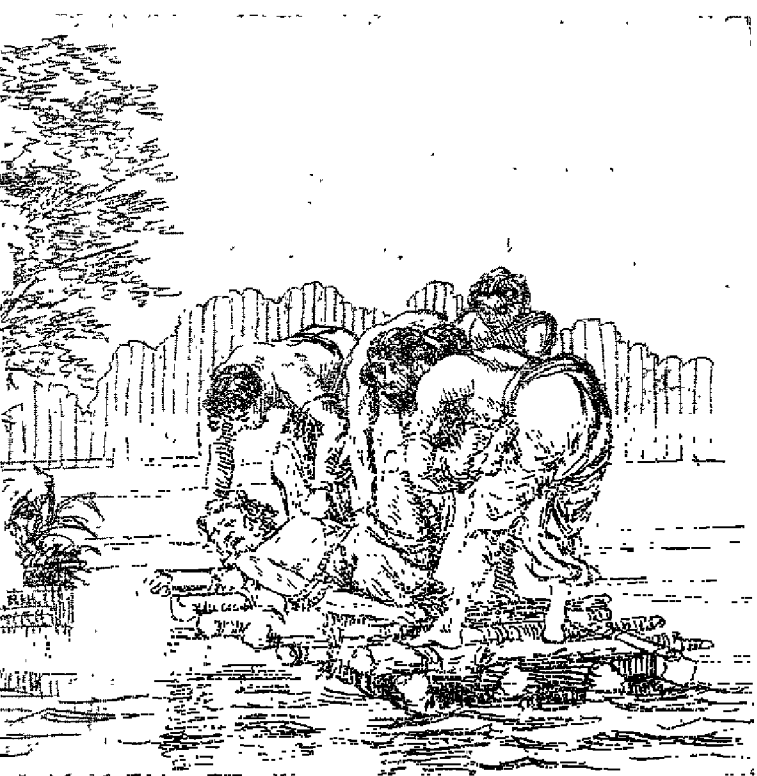
भीष्म कहते हैं कि प्रद्वेषी के वचन सुनकर दीर्घतमा को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने उससे कहा—तुमको जो धन की ज़रूरत है तो मुझे किसी क्षत्रिय राजा के पास ले चलो। वहाँ जितना धन तुम चाहोगी, मिल जायगा।

प्रद्वेषी ने कहा—विप्र, तुमसे मिला हुआ धन दुःखदायक ही होगा। इस कारण मैं तुम्हारा दिया या दिलाया धन नहीं चाहती। तुम्हारा जो जी चाहे, करो; मैं पहले की तरह अब तुम्हारा भरण न करूँगी। दूसरा भर्ता कर लूँगी।

इस पर दीर्घतमा ने सामाजिक नियम का निर्देश करते हुए कहा—मैं आज से संसार में यह सदाचार स्थापित करता हूँ कि स्त्री मरते दम तक एक ही पति के अधीन रहेगी। पति के मरने पर या उसके जीते-जी स्त्री अन्य पुरुष को स्वीकार न कर सकेगी। जो स्त्री इस मर्यादा का उल्लङ्घन करेगी वह पतित समझी जायगी। पतिहीन स्त्री को पग-पग पर पातक होगा। पतिहीन स्त्रियाँ सब प्रकार के भोग उपस्थित रहने पर भी उन्हें भोग न सकेंगी—उन्हें ब्रह्मचर्य से रहना पड़ेगा। वे सदा अपयश और निन्दा की भागिनी होंगी।

स्वामी के ये वचन सुनकर प्रद्वेषी को ऐसा क्रोध चढ़ आया कि उसको यह ज्ञान न रहा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। उसने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम इस

प्रवाह में फेंक आओ। गौतम आदि क्रूर पुत्रों ने माता की आज्ञा
क्यों इस जन्म के अन्धे पिता का भरण-पोषण करें। सबने मिल-



पिता को बेड़े पर बिठाकर गङ्गा के प्रवाह में बहा दिया। फिर वे
जन्म के अन्धे दीर्घतमा उस बेड़े के सहारे प्रवाह में बहते-बहते
।

नाम के धार्मिक राजा नदी में नहा रहे थे। प्रवाह में बहते-बहते
पहुँचे। राजा उनको निकालकर अपने घर ले गये। उनका
र्थना की कि भगवन्, आप धर्मात्मा हैं। आप मेरी रानियों के गर्भ
कीजिए। ऋषि ने स्वीकार कर लिया। तब बलि ने अपनी रानी
ाने के लिए कहा। किन्तु रानी ने उनको अन्धा और बूढ़ा देखकर
अपनी दासी को उनके पास भेज दिया। दीर्घतमा ने उसके गर्भ
वेद-पाठी पुत्र उत्पन्न किये।

दिन राजा बलि ने सब पुत्रों को देखकर महर्षि दीर्घतमा से पूछा
रे पुत्र हैं? ऋषि ने उत्तर दिया—नहीं ये मुझसे शूद्रयोनि में उत्पन्न

हुए हैं। अतएव ये मेरे पुत्र हैं। तुम्हारी रानी सुदेष्णा ने मुझको अन्धा और बूढ़ा देख मोहवश घृणा करके अपनी दासी को मेरे पास भेज दिया था, आप नहीं आईं। यह हाल सुनकर राजा ने ऋषि को फिर सन्तुष्ट किया और गर्भ धारण करने के लिए रानी सुदेष्णा को उनके पास भेजा।

महर्षि दीर्घतमा ने सुदेष्णा के अङ्गों को छू करके कहा—तुम्हारे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पौण्ड्र और सुह्म नाम के सूर्य के समान तेजस्वी पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे; वे अपने-अपने नाम से एक-एक देश में एक-एक राज्य स्थापित करेंगे। इसी कारण उन्हीं राजकुमारों के नाम पर बसे हुए अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म नाम के देश प्रसिद्ध हुए हैं।

माता, मैंने सुना है कि पूर्व समय में राजा बलि का वंश इस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के द्वारा चला था। इसी प्रकार पृथ्वी पर ब्राह्मणों के वीर्य से अनेकानेक बलवान् और वीर्यशाली क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं। यह सब सुनकर इस समय जो कर्त्तव्य समझ पड़े, वह करो।

एक सौ छः अध्याय

सत्यवती के स्मरण करने से व्यास का आना और पुत्र उत्पन्न करना अङ्गीकार करना

भीष्म ने कहा—जिस धर्म का अनुष्ठान करने से फिर भरतवंश की वृद्धि हो सकती है, सो मैं कहता हूँ, सुनो। किसी गुणी ब्राह्मण को धन देकर बुलाओ। वही विचित्रवीर्य की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करें।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, सत्यवती ने कुछ लज्जित भाव से सिर नीचा करके धीमे स्वर में कहा—महाबाहो, तुमने जो कहा सो सत्य है। मुझको तुम पर पूरा विश्वास है, इसी से कहती हूँ। मैं भरतवंश चलाने के लिए जो कहूँगी उसे आपद्धर्म समझकर उसमें तुम असम्मति न प्रकट करना। हमारे कुल में तुम्हीं धर्म हो, तुम्हीं सत्य हो और तुम्हीं गति हो। इस कारण मेरी बात सुनकर जो कर्तव्य समझना सो करना।

मेरे पिता धर्मात्मा थे। उन्होंने धर्मार्थ, बिना पैसा-कौड़ी लिये, यमुना पार कर देने को एक नाव रख छोड़ी थी। [मैं उसी नाव पर चढ़ाकर बटोहियों को यमुना के इस पार से उस पार पहुँचाती थी।] यह काम करते-करते मैं जवान हो गई। इसी बीच एक दिन धार्मिक-श्रेष्ठ महर्षि पराशर वहाँ पर आये। मैं उनको नदी के पार नाव पर लिये जा रही थी; बीच में कामवश होकर ऋषि ने प्रार्थनापूर्वक समझाकर मुझसे कहा—सुन्दरी, तुम मेरी इच्छा पूरी करो उन्होंने मेरी उत्पत्ति का हाल भी सुना दिया मैं पहले पिता को डरी, अन्त में मुनि

के शाप को भी डरी। तब मुनि ने दुर्लभ श्रेष्ठ वर दिया। इन कारणों से मैं मुनि की प्रार्थना को अस्वीकार न कर सकी। ऋषि ने कुहरा पैदा करके अँधेरा कर दिया। अपने तेजोबल से मुझ बालिका को उन्होंने मोहित कर लिया। पहले मेरे शरीर में घृणा-जनक मछली की दुर्गन्ध आती थी। मुनि के प्रभाव से वह गन्ध दूर हो गई और मेरे अङ्गों से सुगन्ध आने लगी। वे जाते समय मुझसे कह गये कि मेरे वीर्य से तुम एक पुत्र इसी द्वीप में उत्पन्न करोगी। तुम्हारा कन्या-भाव दूषित नहीं हुआ; तुम डरो नहीं।

भीष्म, इस तरह कन्यावस्था में ही, पराशर ऋषि से, द्वैपायन नाम के परम प्रतापी पुत्र को मैं उत्पन्न कर चुकी हूँ। उन सत्यवादी मेरे पुत्र ने अपने तपोबल से वेदों का 'व्यास' अर्थात् विभाग किया है, इसी से लोग उन्हें वेदव्यास कहते हैं। उनका रङ्ग काला है इससे उनका एक नाम कृष्ण भी है। निष्पाप पराशर-पुत्र व्यास उत्पन्न होते ही शान्ति-धर्म को स्वीकार करके, तप करने के लिए, पिता के साथ चले गये थे। मैं इस काम में उन्हीं को नियुक्त करना चाहती हूँ, तुम भी स्वीकार करो। वही तुम्हारे भाई की स्त्री में कल्याण का कारण सन्तान उत्पन्न करें। उन्होंने जाते समय मुझसे कहा था कि माता, विपत्ति के समय मुझे स्मरण करना, मैं उसी समय तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। इसलिए तुम अनुमति दो तो मैं उन्हें स्मरण करूँ। महातपस्वी व्यास तुम्हारी अनुमति पाकर विचित्रवीर्य की रानियों में वंशधर पुत्र उत्पन्न करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, महर्षि वेदव्यास का नाम सुनते ही भीष्मजी ने हाथ जोड़कर सत्यवती से कहा—माता, जो कोई स्थिर चित्त से धर्म, अर्थ, काम को और उनके परिणाम-फलों को अलग-अलग विचार करके कर्त्तव्य का निश्चय और कार्य करता है वही बुद्धिमान् है। इस समय आपने हमारे वंश की भलाई और उद्धार के लिए धर्म के अनुसार जो कर्त्तव्य निश्चित किया है उसमें मैं तुमसे सहमत हूँ।

महाराज, भीष्म के यों कहने पर सत्यवती ने अपने पुत्र कृष्ण द्वैपायन को स्मरण किया। [वेदव्यासजी उस समय वेदान्तसूत्रों की रचना में लगे हुए थे।] उन्हें दिव्यज्ञान से मालूम हुआ कि माता ने स्मरण किया है। व्यासजी उसी समय माता के पास आ पहुँचे। और किसी को इसकी ख़बर ही नहीं हुई। तब दाशराज की कन्या सत्यवती ने यथोचित आदर के साथ व्यास को छाती से लगा लिया। स्नेह के मारे उनके स्तनों से दूध की धार निकल पड़ी। बहुत दिनों के बाद पुत्र को देखकर सत्यवती ने आनन्द के आँसू बहाये। माता को स्वस्थ करके व्यास ने प्रणाम किया और कहा—आपका काम सिद्ध करने के लिए मैं आया हूँ; आज्ञा कीजिए, क्या करना होगा।

अब भरतवंश के कुल-पुरोहितों ने विधिपूर्वक व्यास की पूजा की। व्यासजी ने वेद के मन्त्र पढ़कर पूजा ग्रहण की। फिर सन्तुष्ट चित्त से उत्तम आसन पर बैठकर उन्होंने माता के

किये कुशलप्रश्न का उत्तर दिया। कुशलप्रश्न हो चुकने पर सत्यवती ने
विज्ञ, माता और पिता दोनों के मेल से सन्तान उत्पन्न होती है। इस
का समान अधिकार है। पुत्र पर जैसे पिता का दावा है वैसे माता का भी
ऐसी ही व्यवस्था कर गये हैं। ऋषिश्रेष्ठ, तुम मेरे प्रथम पुत्र हो; विचित्रव
पिता के सम्बन्ध से भीष्म जैसे विचित्रवीर्य के भाई हैं, वैसे ही माता के सम्ब
भाई होते हो। मेरा तो यही मत है; मालूम नहीं, तुम्हारा मत क्या है। ये शान्तनु के पुत्र भीष्म अपनी पूर्व-प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं, इस कारण न पुत्र उत्पन्न करना चाहते हैं, और न राज्य करना चाहते हैं। भाई के स्नेह से, उसकी कुलवृद्धि के लिए, भीष्म के अनुरोध और मेरी आज्ञा को मानकर, सब प्रजा पर दया करके उसकी रक्षा के विचार से इस समय तुम मेरा कहा करो। पुत्र, तुम्हारे स्वर्गवासी भाई के दो रानियाँ हैं। वे दोनों देव-कन्याओं के समान सुन्दरी, गुणवती और धर्मपूर्वक सन्तान की इच्छा रखती हैं। अतएव मैं तुमको आज्ञा देती हूँ कि तुम उनके गर्भ से भरतवंश की रक्षा के लिए अनुरूप पुत्र उत्पन्न करो।



व्यास ने कहा—माता, आप इस लोक और परलोक के सब धर्मों को
दोनों लोकों में शुभ फल देनेवाले धर्म का आचरण भी करती हैं। इस का
उद्देश्य से, मैं आपकी आज्ञा के अनुसार कार्य करूँगा। यह सनातन [
भी मालूम है। मैं अपने भाई की स्त्रियों में मित्रावरुण के समान प्रतापी
उत्पन्न करूँगा। पहले दोनों रानियों को शुद्धि के लिए एक वर्ष तक, जैसे
धारण करना होगा। उस व्रत का अनुष्ठान किये बिना कोई स्त्री मेरे तेज को न

सत्यवती ने कहा— पुत्र, शीघ्र ही उन रानियों में गर्भाधान करो।
पर रक्षकहीन प्रजा का जल्दी नाश हो जाता है। ऐसी दशा में लौकिक
किसी प्रकार के शुभ कार्य नहीं होते, इस कारण वर्षा नहीं होती और देवता

के बिना किसी तरह राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। इससे के पुत्र उत्पन्न करो। लालन-पालन करके भीष्म उन्हें जल्दी राज्य-।

दि असमय में ही भाई के पुत्र उत्पन्न करने को कहती हो तो उन परम व्रत है कि वे मेरे इस विकृत वेष को देखकर घृणा न करें। यदि मेरे शरीर की गन्ध को रानी सह ले और मेरे रूप, वेष और शरीर को देखकर डरे नहीं तो वह तुरन्त गर्भवती हो जायगी।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महा तेजस्वी व्यास यों कहकर अन्तर्द्धान हो गये। जाते समय कह गये कि कौशल्या (यह अम्बिका का दूसरा नाम था) साफ़ कपड़े और गहने पहनकर शय्या पर जाकर मेरे समागम की इच्छा करे।

अब सत्यवती ने एकान्त में बहू को बुलाकर कहा—कौशल्या, मैं तुमसे धर्म और युक्ति-सङ्गत हित की बात कहती हूँ; सुनो। मेरे दुर्भाग्य के कारण भरतवंश का लोप होता देख पड़ता है। इस समय भीष्म ने मुझे व्यथित और पिता के वंश का लोप होते देखकर एक धर्म-सङ्गत उपाय सोचा है। य के द्वारा कार्य की सिद्धि तभी हो सकती है जब तुम उसे स्वीकार म मेरा कहा मानकर वंश का भला करो। बेटी, इन्द्रतुल्य प्रभाव- नष्ट हो रहे भरतवंश को फिर चलाओ। तुम्हारा पुत्र इस परम्परा सन करेगा।

ुझाकर बड़ी कठिनाई से सत्यवती ने कौशल्या को राज़ी किया। फिर ब्राह्मण, देवता, ऋषि और अतिथि-अभ्यागतों को भोजन कराया।

एक सौ सात अध्याय

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, कौशल्या ने यथासमय ऋतुस्नान किया। तब सत्यवती ने उसे शयन-भवन में जाने की आज्ञा देकर धीरे से कहा—कौशल्या, तुम्हारे एक देवर हैं। वे आज आधी रात के समय तुम्हारे पास आवेंगे; तुम सावधानी के साथ उनकी बाट जोहना। सास की ये बातें सुनकर अम्बिका शयन-भवन में जाकर लेट रही और भीष्म तथा अन्यान्य श्रेष्ठ कौरवों का ध्यान करने लगी।

इसी बीच में सत्यवादी व्यासदेव [पुत्र उत्पन्न करने के लिए माता की आज्ञा से] उस भवन के भीतर गये। उस समय वहाँ रत्न-दीपक जगमगा रहे थे। अम्बिका ने महर्षि के काले रङ्ग, पीली जटा, प्रज्वलित नेत्र और भूरी दाढ़ी-मूछें देखकर डर से आँखें मूँद लीं। माता की अनुमति से भाई की भलाई के लिए व्यास ने गर्भाधान किया; किन्तु काशिराज की कन्या ने आँखें नहीं खोलीं।

व्यास के बाहर आने पर सत्यवती ने पूछा—पुत्र, इस गर्भ से गुणी राजपुत्र उत्पन्न होगा? दिव्यज्ञानी व्यासदेव ने उत्तर दिया—माता, इस गर्भ से दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाला, महाभाग, महावीर्य, बुद्धिमान् राजर्षि बालक उत्पन्न होगा। उसके भी एक सौ पुत्र होंगे। किन्तु माता के दोष से वह जन्मान्ध होगा। यह सुनकर सत्यवती ने कहा—हे तपोधन, अन्धा बालक तो कुरुवंश के योग्य राजा नहीं हो सकता। इस कारण तुम जाति और वंश की रक्षा करनेवाला, पिता के वंश को बढ़ानेवाला दूसरा पुत्र उत्पन्न करो। वही कुरु-कुल का राजा होगा। महायशस्वी व्यासदेव माता की इस आज्ञा को भी स्वीकार करके चले गये। कुछ दिनों बाद समय आने पर कौशल्या के एक अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ। अब दूसरी बहू अम्बालिका को राज़ी करके सत्यवती ने फिर व्यासदेव का स्मरण किया। व्यासदेव फिर आये और उन्होंने अम्बालिका के गर्भाधान किया। उस समय अम्बालिका मारे डर के पीली पड़ गई। यह देखकर महर्षि व्यास ने उससे कहा—तुम मुझे देखकर डर के मारे पीली पड़ गईं, इस कारण तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न बालक पाण्डु रङ्ग का होकर पाण्डु नाम से ही प्रसिद्ध होगा। अब मैं जाता हूँ।

वहाँ से बाहर निकलकर व्यास ने माता सत्यवती से भी कह दिया कि माता के दोष से यह बालक भी पाण्डुवर्ण होगा। यह सुनकर सत्यवती ने व्यास से और एक सर्वाङ्ग-सुन्दर पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की। व्यास ने फिर भी स्वीकार कर लिया। कुछ दिन

बाद अम्बालिका के एक सुन्दर पाण्डुवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ। अद्वितीय पाँचों पाण्डव इन्हीं पाण्डु के पुत्र हैं।

कुछ समय बीतने पर बड़ी रानी अम्बिका ने फिर ऋतुस्नान किया। यह देखकर सत्यवती ने फिर पुत्र उत्पन्न करने के लिए व्यासदेव के पास जाने को उससे कहा। रानी ने स्वीकार तो कर लिया, परन्तु पहले की वह मुनि के शरीर की गन्ध, उनका रूप, वेष और शरीर याद आ जाने से वह उनके पास न जा सकी। उसने अप्सरा के समान सुन्दर अपनी दासी को अपने कपड़े और गहने पहनाकर व्यास के पास भेज दिया। वह दासी अभ्यागत महर्षि के पास जाकर उनका पूजन और प्रणाम करके उनकी आज्ञा से पलँग पर बैठ गई। व्रतधारी द्वैपायन व्यास उसके सहवास से विशेष सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसे वर दिया कि आज से तू दासीभाव से छुटकारा पा जायगी। इसके सिवा तेरे गर्भ से उत्पन्न बालक संसार में परम-धार्मिक और सबसे बढ़कर बुद्धिमान् होगा।

राजन्, महात्मा धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई व्यास-पुत्र विदुर उसी दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए। काम-क्रोध-रहित, व्यवहार-कुशल विदुर साक्षात् धर्म के अवतार थे। धर्म ने ही, अणीमाण्डव्य के शाप से, शूद्रयोनि में जन्म लिया था। महाराज, व्यासजी दासी को वर देकर जब बाहर निकले तब उन्होंने सत्यवती से कहा—माता, तुम्हारी बहू ने दासी को मेरे पास भेजकर छल किया। जो हो, मैं तुमसे उऋण हो गया; इस बार भी गर्भाधान करके अब जाता हूँ। बस, ऋषि अन्तर्द्धान हो गये। इस प्रकार विचित्रवीर्य के क्षेत्र में व्यास के वीर्य से कुरुवंश को बढ़ानेवाले देव-कुमार-सदृश बालक उत्पन्न हुए।

एक सौ आठ अध्याय

अणीमाण्डव्य का उपाख्यान

जनमेजय ने पूछा—भगवन्, धर्मराज ने ऐसा कौन अपराध किया था जिससे उन्हें शूद्र-योनि में जन्म लेना पड़ा? किस ऋषि ने उनको किसलिए शाप दिया?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, माण्डव्य नाम के बुद्धिमान्, सत्यवादी, धर्मज्ञ एक ब्राह्मण थे। वे एक समय अपने आश्रम के द्वार पर, एक वृक्ष की जड़ में बैठकर, ऊपर हाथ उठाये मौन-व्रत धारण किये तपस्या कर रहे थे। इसी तरह बहुत समय बीतने पर कुछ डाकू डाके का धन लिये हुए उधर से निकले। वे पीछे आ रहे राजदूतों के डर से उस धन को वहीं पर धरती में गाड़कर छिप रहे राजदूत उन डाकुओं का पीछा करते हुए वहाँ पर आ गये। वे मौनव्रत

धारी मुनि से बारंबार पूछने लगे कि हे द्विजश्रेष्ठ, डाकू किस राह से
शीघ्र बतलाइए, हम भी उसी राह जायँ। तपस्वी माण्डव्य मौन थे, इस
उत्तर नहीं दिया। वे राज-सैनिक इधर-उधर खोज करने लगे। उन
के आसपास छिपे हुए मिल गये। लूट का धन भी वहाँ गड़ा हुआ मि
हियों को ऋषि पर भी सन्देह हुआ। वे ऋषि को भी डाकुओं के साथ बाँधकर राजा के सामने ले गये। राजा ने विचार करके सबको सूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। सिपाहियों ने डाकुओं के साथ माण्डव्य ऋषि को भी सूली पर चढ़ा दिया। वह धन राजा के ख़ज़ाने में जमा हो गया।



महातपस्वी माण्डव्य सूली पर चढ़ाये जाने पर भी मरे नहीं। सूली पर चढ़े-चढ़े निराहार रहकर तपस्या करने लगे। तपोबल से और-और ऋषियों को उन्होंने उस जगह पर बुला लिया। उनकी इस दशा का पता पाकर दुःखित मुनिगण, पक्षियों के रूप से, रात को उनके पास आये। पहले अपना-अपना परिचय देकर उन्हों
आपने कौन सा पाप किया है जिससे आप सूली पर चढ़ने की भयानक
कहिए, हम सुनना चाहते हैं।

एक सौ नव अध्याय

धर्म को अणीमाण्डव्य ऋषि का शाप

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, माण्डव्य ऋषि ने ऋषियों के
सके लिए किसको दोष दूँ? किसी ने मेरा अपराध नहीं किया।

कुछ समय बीतने पर राजा के सिपाहियों ने आकर देखा कि ऋषि
सूली पर चढ़े हैं यह देखकर सिपाहियों को बड़ा अचरज हुआ

कहा। राजा ने सुनकर मन्त्रियों से सलाह करके यह निश्चय किया कि .मुच कोई तपस्वी हैं। तब वे सूली के स्थान पर आकर ऋषि को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने लगे—हे ऋषिश्रेष्ठ, मैंने मोहवश होकर अज्ञान से यह अपराध किया है। इस कारण सन्तुष्ट होकर मुझे क्षमा कीजिए। राजा की स्तुति से माण्डव्य ऋषि प्रसन्न हुए। राजा ने ऋषि को सूली पर से उतरवा लिया। उनकी देह में घुसे हुए सूली के अग्रभाग को निकलवाने की राजा ने बड़ी चेष्टा की, परन्तु वह न निकला। तब राजा ने सूली को तुड़वा डाला। वह सूली की नोक ऋषि के शरीर में घुसी ही रही।



इसके बाद महर्षि माण्डव्य बहुत दिनों तक इसी अवस्था में घोर तप करते रहे। कठोर तप करके उन्होंने दुर्लभ लोकों को जीत लिया। वह अणी (अनी) ोक शरीर में घुसी रहने के कारण वे अणीमाण्डव्य नाम से प्रसिद्ध हुए। णीमाण्डव्य एक दिन धर्मराज की सभा में पहुँचे। वहाँ अपने आसन पर बैठे .रस्कार करते हुए ऋषि ने कहा—मैंने अज्ञानवश कौन सा भारी पाप किया मुझे सूली पर चढ़ने का दारुण दुख भोगना पड़ा? [तुमने अकारण मुझको कारण] अभी मैं तुमको अपना तपोबल दिखाता हूँ।

ा—हे तपोधन, तुमने एक सींक में कई एक टीड़ियों को छेदकर बचपन में ी पाप का यह फल तुमको भोगना पड़ा है। थोड़ा सा दान भी बहुत फल थोड़ा सा पाप भी बहुत दुख देता है। यह पातक तुमने बचपन

ने कहा—बारह वर्ष की उम्र तक बच्चा जो कुछ भी करे उसका उसे अधर्म ही धर्मशास्त्र का मत है। यद्यपि और हत्याओं के सामने ब्राह्मण-वध बहुत ने स्वल्प पाप के कारण मुझे इतना भारी दण्ड दिया है। इस कारण हे धर्म, शूद्र-योनि में जन्म पाओगे आज से मैं संसार में यह मर्यादा स्थापित करता

हूँ कि जन्म से चौदह वर्ष की अवस्था तक किया गया पाप पाप न समझा जायगा। उसके बाद किये हुए पाप का फल सबको भोगना पड़ेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसी अपराध के कारण ऋषि के शाप से धर्म को शूद्र-योनि में उत्पन्न होना पड़ा। विदुर धर्म के अवतार थे। वे धर्म और लौकिक व्यवहार में निपुण, काम और क्रोध आदि से रहित, दूरदर्शी, शान्त और कौरवों की भलाई सोचने और करने में तत्पर थे।

एक सौ दस अध्याय

पाण्डु का राज्याभिषेक होना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! धृतराष्ट्र, पाण्डु और महात्मा विदुर के उत्पन्न होने पर कुरुजाङ्गल, कुरुक्षेत्र और कुरुवंशियों की विशेष उन्नति होने लगी। पृथ्वी में बेहद अन्न उपजने लगा। सभी अन्न सरस होते थे। मेघ ठीक समय पर बरसते थे। वृक्षों में असंख्य फूल-फल देख पड़ते थे। गाय, घोड़े आदि सब पशु प्रसन्नतापूर्वक घास चरते थे। मृग और पक्षी आनन्द से विचरते थे। फूलों में अपूर्व सुगन्ध थी। फलों में अनोखा स्वाद था। सब नगर बनियों और शिल्पियों से पूर्ण थे। सब लोग वीर, विद्वान् और सच्चरित्र होकर सुख भोगते थे। कहीं चोर-डाकुओं का डर नहीं रह गया। कोई पाप करने का विचार भी न करता था। जान पड़ता था, राज्य में सर्वत्र सत्ययुग आ गया है। सब धर्मात्मा प्रजा यज्ञ आदि करके, सत्यपरायण और व्रत-परायण होकर परस्पर प्रीति से बढ़ने लगी। सब लोग अभिमान, क्रोध और लोभ त्यागकर धर्मपूर्वक अपनी जीविका चलाते हुए एक दूसरे को प्रसन्न करने की धुन में थे। जलराशि से जैसे समुद्र पूर्ण होता है वैसे ही मेघखण्ड-तुल्य फाटकों और इन्द्रभवन-तुल्य महलों से वह नगर भरा-पूरा देख पड़ता था। सब प्रजा नदी-जल में, बाग़ों में, बावली, तालाब और मनोहर पहाड़ों के शिखरों पर तथा वनों में आनन्द से विहार करती थी। उत्तर-कुरु देश के निवासी दक्षिण-कुरु देशवालों के साथ होड़ सी लगा करके देव, ऋषि, चारण आदि के समान ऐश्वर्य भोग रहे थे। उस राज्य में असंख्य कुरुवंशी रहते थे। वहाँ कोई कृपण पुरुष या विधवा स्त्री न देख पड़ती थी। उपवन, बावली, कुआ और ब्राह्मणों के घर सब समृद्धियों से भरे-पूरे देख पड़ते थे। सब स्थानों में सदा उत्सव हुआ करते थे। धर्म के अनुसार भीष्म जब प्रजा का पालन करने लगे तब देश में सब जगह यज्ञ के खम्भे ही गड़े हुए देख पड़ने लगे। वहाँ धर्म-चक्र इस प्रकार चलने लगा कि सभी राज्यों के मनुष्य अपने-अपने देश छोड़कर उसी राज्य में रहने के लिए आने लगे। प्रधान-

प्रधान कुरुवंशियों और पुरवासियों के घरों में दान करने और साधु-अभ्यागतों को भोजन कराने के ही शब्द सदा सुनाई पड़ने लगे। भीष्मजी जन्मकाल से ही असाधारण बुद्धिमान् धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को अपने पुत्र की तरह स्नेह से पालने लगे। क्षत्रियोचित संस्कार हो जाने पर तीनों कुमार शास्त्र पढ़ने लगे। क्रमशः जवान होकर वे तरह-तरह की कसरतें सीखकर वेद, वेदाङ्ग, गदा-युद्ध और ढाल-तलवार के युद्ध में, हाथी-घोड़ों पर चढ़ने में, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, शिक्षाशास्त्र आदि सभी विषयों में पूरे पण्डित हो गये। पाण्डु धनुष के युद्ध में, और धृतराष्ट्र शरीर के बल में सबसे बढ़कर हुए। विदुर के समान धर्म का जानकार और धर्मात्मा पुरुष त्रिभुवन में कोई नहीं देखा गया। शान्तनु के नष्ट वंश को फिर से चलते देखकर सर्वत्र कहावत की तरह यह बात फैल गई कि "वीरजननी स्त्रियों में काशिराज की अम्बिका और अम्बालिका नाम की दोनों कन्याएँ श्रेष्ठ हैं, देशों में कुरुजाङ्गल देश प्रधान है, धर्मज्ञ लोगों में भीष्म श्रेष्ठ हैं और नगरों में हस्तिनापुर उत्तम है।" राजन्, धृतराष्ट्र अन्धे होने के कारण और विदुर दासी-पुत्र होने के कारण राजा नहीं हुए। राजगद्दी पाण्डु को ही मिली।

एक दिन नीतिज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ भीष्मजी ने धर्म और अर्थशास्त्र के ज्ञाता विदुर को बुलाकर यों कहा।

एक सौ ग्यारह अध्याय

धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का ब्याह

भीष्म ने कहा—पुत्र, हमारे इस कुरुवंश में उत्पन्न पहले के राजाओं में सभी गुण थे। वे धर्म्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए पृथ्वी के सभी राजाओं पर आधिपत्य कर गये हैं। उस वंश का नाश न होने देने के विचार से मैंने और माता सत्यवती ने महात्मा वेदव्यास के द्वारा तुम लोगों को उत्पन्न कराकर वंश चलाने का उपाय किया है। अब मेरा और तुम्हारा यही कर्त्तव्य है कि यह महान् वंश आगे भी समुद्र के समान जैसे बढ़ाया जा सके वैसे इसे बढ़ाना चाहिए। मैंने सुना है कि यदुवंशी राजा शूरसेन, राजा सुबल और मद्र-नरेश, इन तीनों के एक-एक सुन्दरी कन्या है। ये तीनों कन्याएँ अच्छे कुल में उत्पन्न, रूपवती और हमारे सम्बन्ध के योग्य हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वंशवृद्धि के विचार से उन्हें, तुम लोगों के लिए, उनके पिताओं से माँगूँ। तुम्हारी क्या सलाह है?

विदुर ने कहा—आर्य, आप ही हम तीनों बालकों के माता, पिता और परमगुरु हैं। इस कारण जिसमें आप इस वंश की भलाई समझें वही करें।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कौरवों के पितामह भीष्म ने ब्राह्मणों से सुना कि राजा सुबल की कन्या गान्धारी ने भगवान् शङ्कर की आराधना करके उनसे सौ पुत्र होने का वर पाया है। यह ख़बर पाकर भीष्म ने गान्धार देश के राजा सुबल के पास अपना दूत भेजा। सुबल को मालूम था कि धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे हैं। इसी से भीष्म की इच्छा सुनकर पहले वे सोच-विचार में पड़ गये। किन्तु वर के कुल, आचरण, यश और ऐश्वर्य का विचार करके अन्त को कन्या देने के लिए राज़ी हो गये। गान्धारी ने सुना, उसके पति धृतराष्ट्र अन्धे हैं और माता-पिता ने उन्हीं के साथ व्याह पक्का कर दिया है। तब इस विचार से, कि स्वामी को अन्धा देखकर उनके प्रति घृणा और विद्वेष न हो, पतिव्रता गान्धारी ने उसी समय कपड़े के कई पर्त करके अपनी आँखों पर भी पट्टी बाँध ली।

अब गान्धार-नरेश सुबल के पुत्र शकुनि रूप-गुण-सम्पन्न अपनी बहन को साथ लिये हस्तिनापुर में आये। उन्होंने भीष्म की अनुमति से धृतराष्ट्र के साथ आदर-सहित गान्धारी का व्याह कर दिया। इस प्रकार कपड़े, गहने, रत्न आदि के साथ अपनी बहन देकर शकुनि अपने नगर को चले। जाते समय उनका भीष्म ने यथोचित सत्कार किया। पतिपरायणा गान्धारी भी अपने शील-स्वभाव और आचरण से सब कौरवों को और अपने पति को प्रसन्न रखने लगीं। उन्होंने भूलकर भी परपुरुष के गुणों का कीर्त्तन नहीं किया।

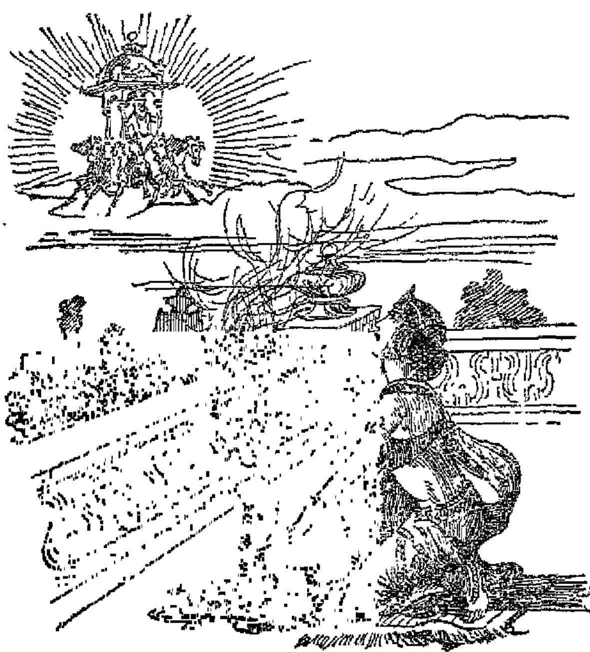
एक सौ बारह अध्याय

कुन्ती का दुर्वासा से मन्त्र पाना और कर्ण की उत्पत्ति का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यदु के वंश में शूरसेन नाम के एक प्रसिद्ध यादव हुए। उनके पुत्र वसुदेव हुए। पहले शूरसेन के पृथा नाम की एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी। शूरसेन पहले ही अपनी बुआ के निःसन्तान पुत्र से यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि मेरी रानी के गर्भ से पहले-पहल जो सन्तान होगी वह मैं तुमको दे दूँगा। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार शूरसेन ने कन्या उत्पन्न होने पर अपने परम हितैषी बुआ के लड़के कुन्तिभोज को वह दे दी। कुन्तिभोज ने उस कन्या को अपने घर आये हुए अभ्यागत ब्राह्मण ऋषियों की सेवा का काम सौंप दिया। पृथा अपने यहाँ आकर ठहरे हुए व्रतधारी, धर्म के गूढ़ रहस्य के जाननेवाले, उग्र-स्वभाव महर्षि दुर्वासा की सेवा करने लगीं। कुन्ती (पृथा) ने यत्नपूर्वक अनेक प्रकार से सेवा करके जितेन्द्रिय महर्षि दुर्वासा को सन्तुष्ट कर लिया। ऋषि प्रसन्न हो गये। उन्होंने दिव्य ज्ञान से जान लिया कि कुन्ती अपने पति के सङ्ग से पुत्र उत्पन्न न कर

सकूँगी। उस समय आपद्धर्म के अनुसार काम निकालने के लिए ऋषि ने कुन्ती को एक अभिचार मन्त्र देकर कहा—सुन्दरी, यह मन्त्र पढ़कर तुम जिस देवता का आवाहन करोगी, वह तुम्हारे पास आ जायगा और उसके प्रभाव से तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा।

उनके ऐसा कहने पर यशस्विनी भोजराज की कन्या को ऐसा कौतूहल हुआ कि उन्होंने कुमारी-अवस्था में ही सूर्यदेव का आवाहन किया। मन्त्र पढ़कर आवाहन करते ही त्रिलोक-पालक तेजस्वी सूर्य आ गये। यह अद्भुत घटना देखकर कुन्ती को बड़ा अचरज हुआ। सूर्य ने आकर कहा—कमल-नयनी, मैं आ गया। बतलाओ, तुम क्या चाहती हो? मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? कुन्ती ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, एक ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर मुझको यह विद्या दी है। मैंने मन्त्र-बल की जाँच करने के लिए ही आपका आवाहन किया है। मुझसे अपराध हुआ; मैं हाथ जोड़कर आपसे क्षमा की प्रार्थना करती हूँ। आप प्रसन्न होकर क्षमा कर दीजिए। स्त्रियों का भारी अपराध होने पर भी पुरुष उनकी रक्षा करते हैं।



सूर्य ने कहा—मुझे मालूम है कि दुर्वासा ने प्रसन्न होकर तुमको यह विद्या दी है। तुम डरो नहीं; मुझसे सहवास करो। मुझे तुमने बुलाया, इसी से मैं आया हूँ। मेरा आना व्यर्थ नहीं हो सकता। इसके सिवा मुझे आवाहन करके व्यर्थ लौटा देने से भी तुम दूषित हो जाओगी।

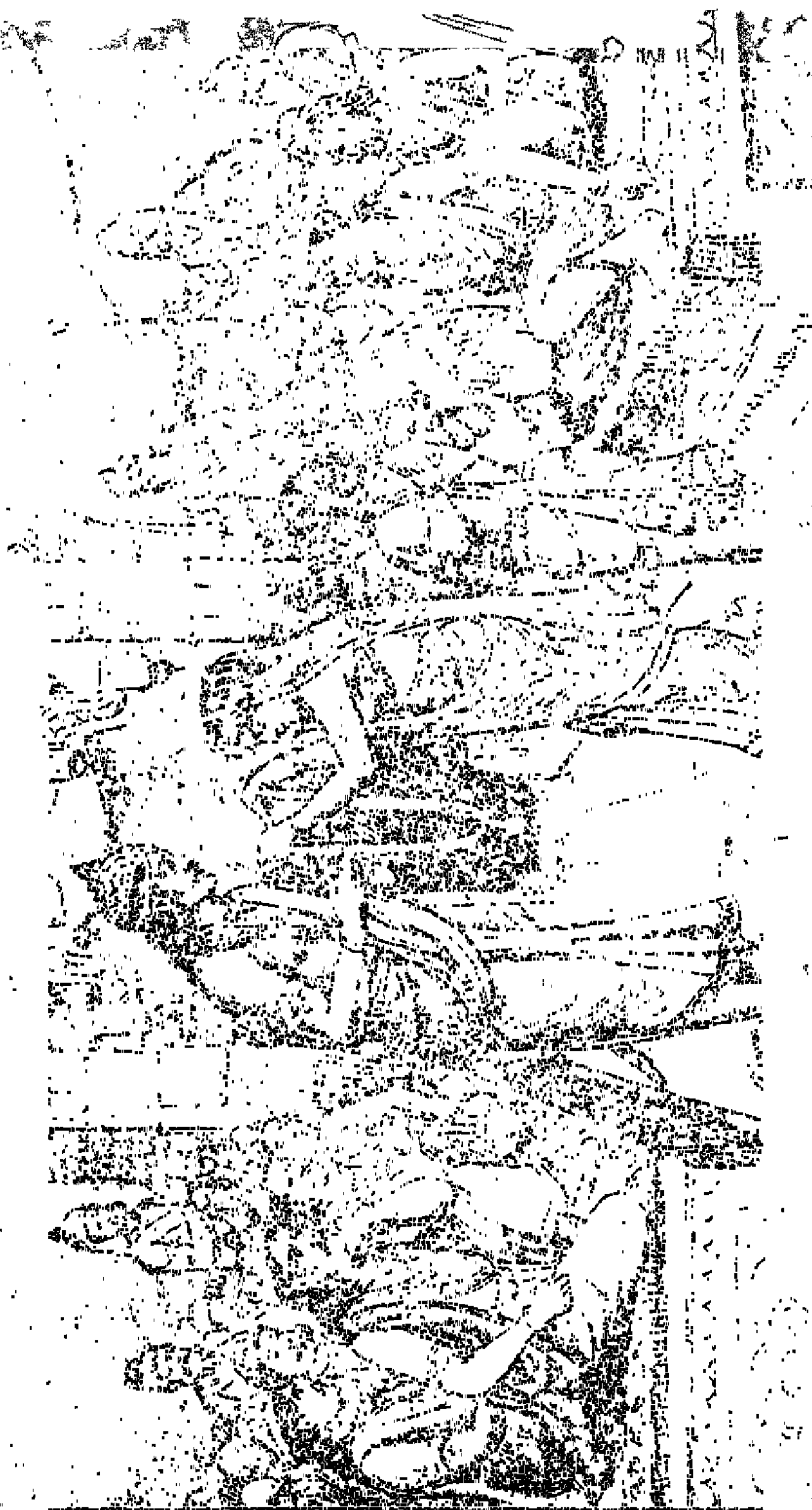
राजन्, सूर्य ने इस तरह समझा-बुझाकर कुन्ती का डर दूर करना चाहा; परन्तु यशस्विनी कुन्ती, अपने कन्या-भाव को याद कर, माता-पिता आदि बन्धु-बान्धवों के डर और लोकलज्जा के कारण, किसी तरह सूर्य का कहना मानने को तैयार न हुईं। तब फिर सूर्य ने कहा—राजकुमारी, मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देता हूँ; 'इस मेरे सहवास से तुम्हारा कन्या-भाव दूषित न होगा।' इसके उपरान्त सूर्यदेव कुन्ती से रमण करके चले गये। उसी समय शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, त्रिलोकप्रसिद्ध, महावीर, देव-कुमार-सदृश, सुन्दर बालक स्वाभाविक कवच और कुण्डल पहने उत्पन्न हुआ। सूर्य के वर से कुन्ती फिर भी कन्या बनी रहीं।

पुत्र पैदा हुआ देखकर सुन्दरी कुन्ती सोचने लगीं कि अ
हो सकती है। लोक-निन्दा से बचने के लिए क्या करना चाहि
अपने इस दुष्कर्म को छिपाने के लिए, बन्धु-बान्धवों के डर से, उसी समय उत्पन्न हुए बालक को [रत्नों से भरे सन्दूक में रखकर] पानी में बहा दिया। उधर राधा के पति महायशस्वी सूतपुत्र अधिरथ को वह बच्चा मिला। उसे जल से निकालकर अधिरथ अपने घर ले गया। राधा और अधिरथ, दोनों स्त्री-पुरुष, अपनी सन्तान की तरह उस बालक का पालन करने लगे। वह बालक कुण्डल और कवचरूपी वसु (धन) के साथ उत्पन्न हुआ था, इसी से पिता-माता ने उसका नाम वसुषेण रक्खा। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ वसुषेण अनेक अस्त्र-शस्त्रों का चलाना सीखने लगे। वे दोपहर से सायङ्काल तक सूर्य के सामने खड़े होकर मन्त्र जपा करते थे। उस समय कोई भी ब्राह्मण आकर
उसको वे देते थे।



एक दिन इन्द्र ने भिक्षुक ब्राह्मण का वेष धारण करके, अपने पु
लिए, महावीर दानी कर्ण के पास आकर उनसे उनके स्वाभाविक क
ने उसी समय शरीर से कवच और कुण्डल काटकर नम्रता के साथ इन्
इस कार्य से इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कवच-कुण्डल लेकर कर्ण
कहा कि तुम देवता, दानव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि जि
यह शक्ति चलाओगे उसे यह अवश्य नष्ट कर देगी। यह 'एक-घातिनी

राजन्, राधा के पुत्र पहले वसुषेण नाम से प्रसिद्ध थे; यह अ
वे "वैकर्त्तन" और "कर्ण" नाम से प्रसिद्ध हुए।



एक सौ तेरह अध्याय

कुन्ती का स्वयंवर और पाण्डु के साथ विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, विशाल नेत्रोंवाली कुन्ती में रूप, नम्रता आदि सभी गुण थे। धर्म पर उन्हें बड़ी श्रद्धा थी। तेजस्विनी, युवती और उत्तम स्त्री के गुणों से भूषित कुन्ती को उनके पिता से एक साथ कई राजाओं ने माँगा। इस कारण कुन्तिभोज ने स्वयंवर कर दिया। स्वयंवर में सब राजा आये। यशस्विनी कुन्ती ने उस सभा में आकर देखा कि सिंहविक्रम, चौड़े सीने के, जवान, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, महाबली, भरत-कुल-तिलक महाराज पाण्डु अपने तेज से और राजाओं की कान्ति को फीका किये हुए सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे हैं। राज-मण्डली में इन्द्र के समान बैठे हुए पाण्डु को देखकर कुन्ती रीझ गई; उन्होंने लज्जा से सिर झुकाकर पाण्डु के ही गले में जयमाल डाल दी। यह देखकर सब आये हुए राजा रथों और घोड़ों पर चढ़कर अपने-अपने नगर को चले गये।

कुन्तिभोज ने विधिपूर्वक पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह कराया और दहेज में बहुत धन-रत्न देकर पाण्डु और कुन्ती को बिदा किया। यात्रा के समय ब्राह्मण और महर्षि आशीर्वाद देने लगे। ध्वजाओं से अलङ्कृत रथों से पूर्ण सेना महाराज की स्तुति करती हुई पीछे-पीछे चली।

नृपश्रेष्ठ पाण्डु, इन्द्राणी-सहित इन्द्र की तरह, रानी कुन्ती को साथ लिये अपनी राजधानी में पहुँचे। उन्होंने कुन्ती को महलों में भेज दिया।

एक सौ चौदह अध्याय

पाण्डु का माद्री से विवाह और दिग्विजय

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इसके बाद शान्तनु के पुत्र भीष्म ने यशस्वी महाराज पाण्डु का और एक ब्याह करना चाहा। मन्त्री, ब्राह्मण और प्राचीन पुरोहित को लेकर चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये महाबली भीष्म मद्र-नरेश की राजधानी में पहुँचे। भीष्म के आने की ख़बर पाते ही वाह्लीकवंश में श्रेष्ठ मद्र-राज आगे से आकर अगवानी करके उनको अपने घर ले गये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि देकर मद्र-राज ने भीष्म से उनके आने का कारण पूछा। भीष्म ने कहा—मद्र-राज, मैं कन्या के लिए आया हूँ। सुना है, आपके एक यशस्विनी सुन्दरी बहन है। मैं पाण्डु के साथ ब्याहने को आपसे उसे माँगता हूँ। राजन्, आप हमारे और हम आपके सम्बन्ध के योग्य हैं। इस कारण विचार करके आप हमारा यह सम्बन्ध स्वीकार कीजिए।

भीष्म के वचन सुनकर मद्र-राज ने कहा—मुझे आपके समान श्रेष्ठ सम्बन्धी दूसरा नहीं मिल सकता। किन्तु हमारे पूर्वपुरुष जो रीति चला गये हैं, वह भली हो चाहे बुरी, उसे हम लोग छोड़ नहीं सकते। वह हमारा कुल-धर्म और हमारे लिए प्रमाण है। आप हमारे उस कुलाचार को अच्छी तरह जानते भी हैं। अतएव "हमको कन्या दो" यह आपको न कहना चाहिए। हम उस कुल-रीति के अनुसार, धन लिये बिना, आपको कन्या न दे सकेंगे।

भीष्म ने कहा—राजन्, ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि कुल-धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। यह रीति पूर्वपुरुषों की चलाई हुई है। इस कारण कन्या का मूल्य (शुल्क) लेना आपके लिए दोष नहीं। आप साधु-सङ्गत सदाचार को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। महातेजस्वी भीष्म ने अब बहुत सा सोना, सोने के गहने, रत्न, घोड़े, हाथी, वस्त्र और ढेर के ढेर मणि, मोती, मूँगे आदि मद्र-राज शल्य को दिये। उस धन को लेकर शल्य बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसी समय अनेक गहनों से सजी हुई अपनी बहन भीष्म के साथ कर दी। माद्री को लेकर भीष्म शीघ्र ही हस्तिनापुर में आ गये। महाराज पाण्डु ने शुभ दिन और शुभ लग्न में माद्री का पाणि-ग्रहण करके उन्हें अपने महल में रक्खा।

कुरुश्रेष्ठ पाण्डु ने एक महीने तक कुन्ती और माद्री के साथ मनमाना विहार करके दिग्विजय के लिए यात्रा करने का विचार किया। उन्होंने भीष्म आदि बूढ़े कौरवों को, धृत-राष्ट्र को और अन्यान्य कौरवों को बुलाकर प्रणाम करते हुए उनसे अपना विचार प्रकट किया। सबने उन्हें उत्साहित किया। तब महाराज पाण्डु ने दिग्विजय के लिए यात्रा की। भीष्म, धृतराष्ट्र आदि बड़े-बूढ़ों ने और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये—स्त्रियों ने मङ्गलाचार किये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से शोभित चतुरङ्गिणी सेना उनके साथ चली।

देवतुल्य महाराज पाण्डु इस तरह पृथ्वीमण्डल को जीतने के इरादे से सेना साथ लेकर चारों ओर विचरने लगे। पहले पुरुषसिंह पाण्डु ने पहले के अपराधी दशार्णदेश के राजाओं को जीतकर अपने वश में किया। इसके बाद अनेक राजाओं के साथ बुराई करनेवाले, बल-गर्वित, मगधराज को 'राजगृह' में मारकर और वहाँ से बहुत धन रत्न तथा घोड़े आदि लेकर वे मिथिला की ओर चले। वहाँ जाकर उन्होंने विदेह नरेश को जीता। अन्त में काशी, सुह्म और पुण्ड्र देश के राजाओं को बाहु-बल से परास्त करके पाण्डु ने कौरवों का यश बढ़ाया। आग के समान राजा पाण्डु राज-मण्डली को जलाते हुए विचरने लगे। पैने बाण ही उनकी ज्वालाएँ थीं और तरह-तरह के शस्त्र चिनगारियों के समान थे। सेना को साथ लिये कुरुकुल-श्रेष्ठ पाण्डु ने सेना-सहित सब राजाओं को जीतकर कुरुवंश का आज्ञाकारी बना लिया। परास्त नरपतियों ने देव-लोक में इन्द्र के समान मनुष्य-लोक में पाण्डु को ही एकमात्र वीर और श्रेष्ठ स्वीकार कर लिया। भेंट के लिए तरह तरह के रत्न, मणि, मूँगा, मोती, सोना, चाँदी, बढ़िया

ड़ा, गधे, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़, कम्बल, मृगछाला आदि सामग्रियाँ लिये जोड़े उनके आगे उपस्थित होते थे। उनसे भेंट लेकर प्रसन्नतापूर्वक महा-ज्य में पहुँच गये। पाण्डु को देखकर सब प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ। आये हुए राजा कहने लगे—बुद्धिमान् महाराज पाण्डु ने भरतकुल-केतु श और प्रसिद्धि को बचाकर अपने कामों से और भी उज्ज्वल कर दिया। ों कौरवों के धन और राज्य को दबा लिया था वे सब इस समय पाण्डु से देने लगे।

ग्विजय से लौट आने का समाचार पाकर मन्त्री, अन्यान्य प्रधान कौरव और लिये हुए भीष्म पितामह पाण्डु से मिलने और उनका स्वागत करने के आ गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक, रत्नों से लदे छकड़े, गाय, हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़ आदि ही देख पड़ते हैं।



कौशल्या के पुत्र पाण्डु भीष्म पितामह को देखकर आगे बढ़कर उनसे मिले। उनके चरणों में उन्होंने प्रणाम किया। फिर उन्होंने सबको यथोचित सत्कार और प्रिय वचनों से प्रसन्न किया। अन्य राजाओं को जीतकर बहुत दिनों के बाद आये हुए पाण्डु को गले से भीष्म आनन्द से आँसू बहाने लगे। चारों ओर तुरही, नगाड़े और शङ्ख उठा। सब पुरवासी प्रजा आनन्द से उछल पड़ी। महाराज पाण्डु ने . नगर में प्रवेश किया।

एक सौ पन्द्रह अध्याय

विदुर का विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डु ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने बाहु-बल से उपार्जित सारा धन भीष्म, विदुर, सत्यवती और अपनी माता को अर्पण कर दिया। उन्होंने धन देकर अपने बन्धु-बान्धवों को भी सन्तुष्ट किया। इन्द्राणी अपने पुत्र जयन्त को छाती से लगाकर जैसे असीम सुख का अनुभव करती हैं, वैसे ही माता कौशल्या पुरुषश्रेष्ठ पुत्र पाण्डु को हृदय से लगाकर आनन्दित होने लगीं। वीर पाण्डु के बाहु-बल की सहायता से धृतराष्ट्र ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये और उनमें हज़ारों-लाखों मोहरें दक्षिणा में दीं।

कुछ दिनों बाद भरतवंशावतंस महाराज पाण्डु रमणीय राजमहल और सुन्दर कोमल शय्या छोड़कर शिकार खेलने के लिए हिमवान् पर्वत के दक्षिण ओर शाल-वन में जाकर रहने लगे। वहाँ वे, दो हथिनियों के बीच में गजराज ऐरावत की तरह, दोनों स्त्रियों को साथ लिये इधर-उधर विचरते फिरते थे। उनके दिव्य कवच और खड्ग, बाण, धनुष आदि शस्त्रों को देखकर वनवासियों ने उन्हें कोई देवता समझा। विशेष ध्यान रखकर महात्मा धृतराष्ट्र सब भोग की सामग्री उसी वन में महाराज पाण्डु के पास भेजते रहते थे।

इधर भीष्म ने सुना कि महाराज देवक के एक दासी के गर्भ से उत्पन्न गुणवती सुन्दरी कन्या है। भीष्म ने विदुर के लिए देवक से वह कन्या माँगी। उसी कन्या के साथ विदुर का व्याह हो गया। उस पत्नी के गर्भ से विदुर ने अपने समान धर्मात्मा कई पुत्र उत्पन्न किये।

एक सौ सोलह अध्याय

गान्धारी के सौ पुत्र उत्पन्न होने का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, धृतराष्ट्र के गान्धारी के गर्भ से एक सौ पुत्र, और एक वैश्य जाति की स्त्री से एक पुत्र, इस तरह एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। पाण्डु की कुन्ती और माद्री, दोनों रानियों में देवताओं के द्वारा पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, किस कारण और कितने दिनों में गान्धारी के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए? वे कितनी आयु तक जिये? वैश्या के गर्भ से धृतराष्ट्र के एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ? ऐसी पतिव्रता धर्मात्मा आज्ञाकारिणी स्त्री गान्धारी के साथ वे कैसा बर्ताव करते थे? पाण्डु को किस तरह किसका शाप हुआ? उस दशा में उन्होंने देवताओं के द्वारा पाँच पुत्र

कराये ? यह सब वृत्तान्त विस्तार से कहिए। पूर्वपुरुषों के उपाख्यान को जितना उतना ही अधिक सुनने को जी चाहता है।

पायन ने कहा—एक दिन भगवान् वेदव्यास भूखे-प्यासे और थके हुए गान्धारी के हुँचे। गान्धारी ने बड़े आदर से सेवा-सत्कार करके उनको प्रसन्न किया। उन्होंने र गान्धारी से वर माँगने के लिए कहा। गान्धारी ने पति के सदृश बली और गुणी गे। व्यास 'तथास्तु' कहकर चले गये।

छ दिनों में धृतराष्ट्र के सहवास से गान्धारी के गर्भ रह गया। दो साल बीत गये, ान न उत्पन्न हुई। इसलिए गान्धारी विशेष चिन्तित हुईं। इसी बीच उन्होंने सुना कि कुन्ती के प्रभातकाल के सूर्य के समान तेजस्वी एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ है। तब डाह के मारे व्याकुल होकर गान्धारी ने सोचा, मेरा यह गर्भ शायद निष्फल ही होगा। दुःख और चिन्ता से ज्ञान-शून्य होकर यही निश्चय करके उन्होंने अपनी कोख में हाथ दे मारा। उस चोट से वह दो साल का गर्भ बाहर निकल पड़ा। वह लोह-पिण्ड के समान कठिन एक मांस का लोथड़ा था। रानी ने उसे फेंक देना चाहा। योग-बल से सब कुछ जाननेवाले व्यासदेव उसी समय वहाँ पर प्रकट हुए। वह मांस का लोथड़ा देखकर उन्होंने कहा—हे राजा सुबल की बेटी, तुम यह क्या कर रही हो ?



पने हृदय का ठीक-ठीक भाव प्रकट करके गान्धारी ने कहा—हे तपोधन, कुन्ती के समान सुन्दर एक बालक उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर मैंने डाह के मारे अपने गर्भाशय मारा। आपने वर दिया था कि मेरे एक सौ पुत्र होंगे। उन सौ पुत्रों के बदले मांस-पेशी देख पड़ती है।

ासजी ने कहा—गान्धारी, तुम्हारे सौ पुत्र अवश्य होंगे। मैंने हँसी में भी कभी झूठ नहीं तो वरदान दिया है। अब तुम एक काम करो। जल्दी से घी से भरे सौ घड़े मँगाकर चित गुप्त स्थान में रख दो और इस मांस पेशी में थोड़ा-थोड़ा ठण्डा पानी छिड़कती रहो।

महाराज, व्यासजी की आज्ञा के अनुसार गान्धारी उस मांस-पेशी के ऊपर जल छिड़कती रहीं। कुछ दिनों में उस मांस-पेशी के अँगूठे-अँगूठे भर के अलग-अलग सौ खण्ड हो गये। तब व्यासजी ने वे सौ टुकड़े उन्हीं घी के सौ घड़ों में छोड़कर एक सुरक्षित गुप्त स्थान में रखवा दिये। जाते समय व्यासजी गान्धारी से कह गये कि दो साल बीतने पर इन घड़ों को खोलना। अब धर्मात्मा व्यासदेव तप करने के लिए फिर हिमालय के शिखर को चले गये।

कुछ दिनों के बाद, समय पूरा होने पर, उन मांस-खण्डों में से पहले दुर्योधन उत्पन्न हुआ। शीघ्र ही भीष्म और विदुर को यह ख़बर मिली। जन्म के अनुसार युधिष्ठिर दुर्योधन से बड़े थे। वीर्यशाली मँझले पाण्डव महाबाहु भीमसेन और दुर्योधन का जन्म एक ही दिन हुआ था।

राजन्, धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन पृथ्वी पर आते ही गधे की तरह रोने और चिल्लाने लगा। उसके उस शब्द को सुनकर गधे, गिद्ध, सियार और कौए बोलने लगे। भयानक आँधी चलने लगी। दिशाओं में दिग्दाह की लाली छा गई।

इन भयानक उत्पातों को देखकर धृतराष्ट्र बहुत डरे। उन्होंने भीष्म, विदुर आदि सब कुरु-वंशियों को और बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—हमारे वंशधर राजा पाण्डु के बड़े बेटे युधिष्ठिर अपने गुण से ही राज्य के अधिकारी हुए हैं; उस विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। मैं आप लोगों से यह पूछता हूँ कि युधिष्ठिर के बाद पैदा होनेवाला मेरा यह बड़ा पुत्र उनके पीछे राजा हो सकेगा या नहीं?

महाराज, धृतराष्ट्र की यह बात पूरी होते ही अमङ्गल शब्द करनेवाली सियारियाँ और अन्यान्य मांसभोजी जीव चारों ओर बोल उठे। ये घोर असगुन देखकर विदुर और आये हुए सब ब्राह्मणों ने कहा—राजन्, आपका यह पुत्र जैसे उत्पन्न हुआ वैसे ही घोर अमङ्गल की सूचना देनेवाले उत्पात होने लगे। इससे जान पड़ता है कि यह आपका पुत्र अवश्य वंश-नाश का कारण होगा। यदि आप अपने कुल भर की भलाई चाहते हैं तो इसे त्याग दीजिए। इसे पालिएगा तो अवश्य ही कुल पर बड़ी भारी विपत्ति आवेगी। यदि आप इस एक को त्यागकर अपने वंश की और जगत् की भलाई कर सकें तो सौ पुत्रों की अपेक्षा निन्नानवे पुत्र ही अच्छे। [नीति में कहा है कि] कुल के भले के लिए एक पुरुष को, गाँव भर के भले के लिए कुल को, राष्ट्र के भले के लिए गाँव को और अपने भले के लिए सारी पृथ्वी को छोड़ देना ही ठीक है।

राजन्, ब्राह्मणों के और विदुर के इन नीति-पूर्ण हितवचनों को सुनकर भी धृतराष्ट्र पुत्रस्नेह के कारण दुर्योधन को त्याग न सके। इसके उपरान्त इसी तरह सौ दिन में, एक-एक करके, धृतराष्ट्र के सब पुत्र पैदा हो गये एक लड़की भी उत्पन्न हुई

जिस समय गान्धारी के गर्भ था और वे कमज़ोर थीं उस समय एक वैश्य-कन्या धृतराष्ट्र की सेवा करती थी। उसी समय उसके गर्भ से धृतराष्ट्र के युयुत्सु नाम का एक और पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजन्, इस तरह धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई।

एक सौ सत्रह अध्याय

दुःशला कन्या की उत्पत्ति का वर्णन

जनमेजय ने कहा—भगवन्, आपने व्यासजी के वर से धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र होने का वर्णन किया। साथ ही यह भी कहा कि उनके वैश्या के गर्भ से एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु यह गान्धारी के गर्भ से एक कन्या होने की बात जो आपने कही, सो समझ में नहीं आई। आपका कथन यह था कि व्यास ने गान्धारी को सौ पुत्र होने का वर दिया। उसमें कन्या की चर्चा भी न थी। महर्षि व्यास ने अ-समय में उत्पन्न मांस-पिण्ड के सौ टुकड़े सौ घड़ों में रखवाये थे। उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। गान्धारी दुबारा गर्भवती भी नहीं हुई। फिर उनके दुःशला नाम की कन्या कब और किस तरह उत्पन्न हुई? विस्तार के साथ वर्णन करके मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, आपने यह बड़ा अच्छा प्रश्न किया; सुनो। भगवान् व्यास ठण्डे पानी से सींचकर जैसे-जैसे उस मांसपेशी के टुकड़े अलग करते गये वैसे-वैसे धाय उन टुकड़ों को घी के भरे घड़ों में छोड़ती गई। इसी बीच गान्धारी के हृदय में कन्या के स्नेह का सञ्चार हुआ। वे सोचने लगीं, इन टुकड़ों से अवश्य ही मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे; महर्षि का कहना झूठ नहीं हो सकता। किन्तु यदि इन सौ पुत्रों के सिवा एक कन्या भी उत्पन्न हो जाय तो मुझे बड़ा आनन्द हो। [सुनती हूँ, नाती के बिना स्वर्ग नहीं मिलता।] कन्या उत्पन्न हो तो मेरे स्वामी भी स्वर्ग-लाभ से वञ्चित न हों। इसके सिवा दामाद होने से स्त्रियों को जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द और किसी तरह नहीं होता। इस कारण यदि इन सौ पुत्रों के बाद मेरे एक कन्या भी उत्पन्न हो तो मैं पुत्रों और नातियों से अपने को कृतार्थ समझूँ। यदि मैंने सचमुच तप किया है, दान दिये हैं, अग्नि में हवन कराया है और गुरुजन की सेवा की है, तो मेरे एक कन्या उत्पन्न हो।

गान्धारी मन में यों सोच रही थीं कि महर्षि व्यास ने उन टुकड़ों को गिना तो सौ से एक अधिक निकला। तब व्यास ने कहा—गान्धारी, मैं कभी झूठ नहीं बोला। तुम्हारे सौ पुत्र तो अवश्य ही होंगे। सौ के सिवा एक टुकड़ा बचा है। जान पड़ता है, तुम्हें एक

नाती भी मिलेगा। इसी से ऐसा हुआ है। तुम्हारी बड़ी इच्छा थी, इससे मैं कहता हूँ कि इस टुकड़े से तुम्हारे एक कन्या भी होगी। अब व्यास ने और एक घी का घड़ा मँगाकर उसमें वह टुकड़ा डाल दिया। राजन्, यह दुःशला के जन्म का वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?

एक सौ अठारह अध्याय

धृतराष्ट्र के पुत्रों का नामोल्लेख

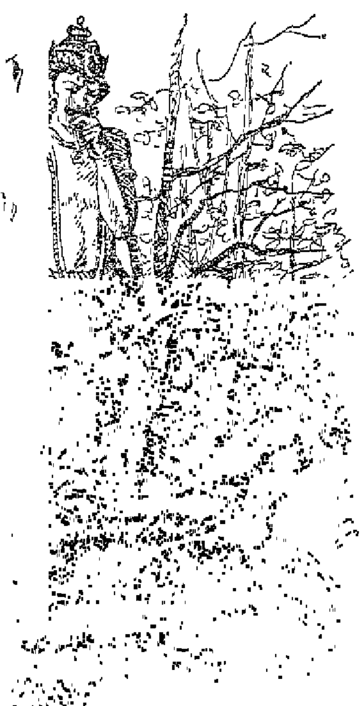
जनमेजय ने कहा—भगवन्, बड़े-छोटे के क्रम से धृतराष्ट्र के उन सौ पुत्रों के नाम सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, सुनिए। धृतराष्ट्र के दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्त्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, कुण्डधार, धनुर्द्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, व्यूढोर, कनकध्वज, कुण्डासी और विरजा, ये सौ पुत्र और एक दुःशला नाम की कन्या उत्पन्न हुई। नामोल्लेख के अनुसार ही इनकी बड़ाई-छुटाई जानना। धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र महारथी, वीर, युद्ध-चतुर, वेदज्ञ और सब अस्त्रों के जानकार थे। धृतराष्ट्र ने गुणवती सुन्दरी राजकुमारियाँ खोजकर यथासमय हर एक पुत्र का विवाह कर दिया। दुःशला का भी ब्याह राजा जयद्रथ के साथ हो गया।

एक सौ उन्नीस अध्याय

राजा पाण्डु को मृगरूप-धारी ऋषि का शाप

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों का अलौकिक जन्म-वृत्तान्त वर्णन किया। बड़ाई-छुटाई के अनुसार उनके नाम भी आपने सुना दिये। अब महाराज पाण्डु के पुत्रों का जन्म-वृत्तान्त और नाम कहिए पाँचों पाण्डव महात्मा और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी

ीन में आपने उन्हें देवताओं के अंश से उत्पन्न बतलाया है। मैं जन्म से
द्‌भुत कार्यों का वर्णन आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ।
ने कहा—राजन्, [यह पहले कहा जा चुका है कि महाराज पाण्डु शिकार
—हिमवान् पर्वत के दक्षिण शिखर पर जाकर रहने लगे थे।] बहुत से
रनेवाले पशुओं से भरे हुए उस वन में विचरते-विचरते पाण्डु ने एक दिन
मृग और मृगी को विहार करते देखा। उन्होंने उसी समय पाँच बाण



तानकर उस मृग और मृगी को मारे। महाराज, वह मृग वास्तव में एक ऋषिकुमार था, जो मृगीरूप-धारिणी अपनी पत्नी के साथ बेखटके विहार कर रहा था। वह मृग, मृगी के साथ, घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने विलाप करते हुए मनुष्य-वाणी में राजा से कहा—राजन्, काम और क्रोध के वश होकर विवेक से रहित बुद्धि-हीन पापी पुरुष भी ऐसा निष्ठुर व्यवहार नहीं करते। बुद्धि दैव को टाल नहीं सकती, दैव ही बुद्धि को बदल देता है। इसी से बुद्धिमान् लोग भी दैव के कराये कामों को कर डालते हैं। नहीं तो धर्मात्मा भरतवंश में उत्पन्न आप काम और लोभ के वश होकर ऐसा निन्दित काम कैसे कर डालते! यह काम आपने
किया! पाण्डु ने कहा—मृग, सुन। राजा लोग शत्रु के मारने में जैसा
वैसा ही शिकार में मृग का वध करने में भी करते हैं। इसलिए तू धर्म को
ा तिरस्कार कर रहा है? शास्त्र में लिखा है कि राजा लोग सामने से और
ा शिकार कर सकते हैं। पहले अगस्त्य ऋषि ने, जब यज्ञ किया था तब,
कार में मृगों को मारा था; और, अभिचार की क्रिया सम्पन्न करने के लिए
ेदा (वपा) से हवन किया था। इस कारण मैंने प्रमाण-सङ्गत धर्म के
ध किया है। तू क्यों वृथा मुझे बुरा-भला कह रहा है?
ा—शत्रु जब निःशस्त्र हो या व्यसन में हो तब उस पर बाण छोड़ना मना
ा समय तो युद्ध ही है। पाण्डु ने उत्तर —हे मृग, तुम्हारा आक्षेप

वृथा है। शत्रु को किसी दशा में छोड़ा नहीं जाता—चाहे वह सावधान हो या असावधान, रक्षित हो या अरक्षित।

मृग ने कहा—राजन्, आपने मुझे मारा है, इस कारण पक्षपात करके मैं केवल मृग-वध के लिए आपका तिरस्कार नहीं करता। मैं तो यही कहता हूँ कि इतने निठुर न बनकर मेरे मैथुन के समाप्त होने तक आपको प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मैथुन का समय सभी प्राणियों के लिए हित का कारण और उनको आनन्ददायक होता है। इस कारण मृग जब मैथुन करते होते हैं तब समझदार लोग उनकी हत्या नहीं करते। राजेन्द्र, मैं पुरुषार्थ-सिद्धि पुत्रोत्पत्ति के लिए आनन्द से मृगी के साथ रमण कर रहा था। आपने मेरे उस उद्देश्य को निष्फल कर दिया। महाराज, पुण्य-कर्म करनेवाले पुरुवंश में उत्पन्न होकर ऐसा निठुर काम करना आपके अयोग्य ही हुआ। ऐसा अधर्म का काम करने से इस लोक में लोक-निन्दा और परलोक में नरक का डर होता है। हे देवतुल्य, आप स्त्री-भोग के सुख और धर्म के मर्म को अच्छी तरह जानते हैं। तब भी आपने ऐसा पापकर्म कैसे किया? हे नरश्रेष्ठ, आप राजा हैं। जो लोग धर्म, अर्थ, काम को छोड़कर निष्ठुर पाप-कार्य करते हैं उन्हें आप ही दण्ड देते हैं। इस समय मृगरूप-धारी, निरपराध मुझ ऋषि-कुमार को मारकर आपने बड़ा अन्याय किया। फल-मूल खानेवाला मैं शान्तचित्त होकर मृग-वेष से वन में रहता था। आपने काम-मोहित होकर हम दो निरपराध प्राणियों को मैथुन के समय मारा है, इस कारण ऐसी ही अवस्था में आपकी भी मृत्यु होगी। मैं किन्दम नाम मुनि हूँ। मनुष्यों के बीच लज्जा आने के कारण मृगी-रूपिणी स्त्री से मृग-रूप होकर रमण कर रहा था। आपने यह हाल बिना जाने मृग समझकर मुझे मारा है; इसलिए मैं आपको ब्रह्म-हत्या के पातक से मुक्त करता हूँ किन्तु इस पाप-कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। आप अन्त समय मोहित होकर जिस समय स्त्री-भोग करना चाहेंगे उसी समय आपकी मृत्यु होगी। जिस स्त्री पर मोहित होकर आप मरेंगे वही आपके साथ सती होगी। जैसे सुख-भोग के समय आपने मुझे दुःख में डाला है वैसे ही सुख के समय आपको भी मृत्यु का दुःख होगा।

शोक से व्याकुल मृग ने इतना कहकर प्राण-त्याग कर दिया। महाराज पाण्डु को इस घटना से बड़ा भारी दुःख हुआ।

एक सौ बीस अध्याय

पाण्डु का दोनों स्त्रियों के साथ वानप्रस्थ हो शतशृङ्ग पर्वत पर तप करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उस मृग के मरने से महाराज पाण्डु को अपने किसी सगे के मरने का सा खेद हुआ। वे अपनी रानियों के साथ विलाप करते हुए कहने लगे—पापी लोग साधुजनों के वंश में जन्म लेकर भी काम-वश होकर अपने ही कर्म से अकृतार्थ रह जाते हैं और अन्त को दुर्गति भोगते हैं। सुना है, बड़े भारी धर्म-निष्ठ महाराज शान्तनु से उत्पन्न मेरे पिता जवानी में ही काम-वश होकर स्वर्गवासी हुए। उन्हीं विषयी राजा की स्त्री में सत्य-वादी भगवान् वेदव्यास ने मुझे उत्पन्न किया है। देवताओं ने मुझे त्याग दिया, नहीं तो इस शिकार के शौक़ में पड़कर मैं ऐसा अनुचित काम क्यों करता, जिससे मुझे ऐसा विकट शाप मिला ! पुत्र-हीन होने के कारण मैं स्वर्ग को नहीं जा सकता। बस, अब मैं मोक्ष की इच्छा से सब त्यागकर अपने पिता वेदव्यास की तरह तपस्या में ही जीवन बिताऊँगा। सिर मुँड़ा-कर, मुनि होकर, नित्य वृक्षों से भिक्षा माँगकर पेट पालूँगा और अकेला मुनियों के आश्रमों मे विचरूँगा। भलाई या बुराई, किसी की चाह न रक्खूँगा। शरीर में भस्म रमाकर सूने घर में या पेड़ों के तले पड़ा रहूँगा। शोक और हर्ष छोड़कर निन्दा और बड़ाई को बराबर समझूँगा। निराहार ही पड़ रहूँगा। आशीर्वाद या प्रणाम की इच्छा न करूँगा। किसी से विरोध न करूँगा। किसी का साथ न करूँगा। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से बचकर गुदड़ी-खड़ाऊँ आदि को भी त्याग दूँगा। किसी का उपहास न करूँगा; किसी पर भौंहें न टेढ़ी करूँगा। सदा प्रसन्नमुख रहकर सब प्राणियों की भलाई में लगा रहूँगा। चार प्रकार के जड़ या चेतन किसी भी प्राणी की हिंसा न करूँगा। सब प्राणियों को अपनी सन्तान की तरह स्नेह की दृष्टि से देखूँगा। वृक्षों से भिक्षा न पाने पर नित्य पाँच या दस गृहस्थों के द्वार पर जाकर एक बार भिक्षा माँग लाऊँगा। जिस दिन भिक्षा नहीं मिलेगी उस दिन निराहार ही रह जाऊँगा। थोड़ा आहार भले ही कर लूँगा, परन्तु एक बार के सिवा दुबारा भिक्षा न करूँगा। लाभ और हानि को समान समझूँगा। कोई मेरे एक हाथ को कुल्हाड़े से काट डालेगा तो यन्त्रणा का अनुभव न करूँगा और यदि कोई मेरे एक हाथ में चन्दन का लेप कर देगा तो मैं उसमें प्रसन्नता का अनुभव न करूँगा। न जीने की ख़ुशी और न मरने का रञ्ज करूँगा। जीवन और मरण, दोनों की परवा छोड़ दूँगा। जीवित व्यक्ति निमेष आदि के द्वारा समय का विभाग करके जिन मङ्गलकर इष्ट-साधक कार्यों को करता है उनको मैं—अपने पापों को मिटाकर, सब कर्म और धर्म-अर्थ के बन्धन से छूटकर—छोड़ दूँगा। सब पापों और बन्धनों से बचकर वायु के समान बे-लाग हो रहूँगा। किसी के वश में न रहूँगा। धैर्य के साथ ऐसे आचरण करता

हुआ प्राण-त्याग करूँगा। कर्म-भोग के लिए पुनर्जन्म का डर फिर न रहे
धर्म-भ्रष्ट कर्ममय कष्टदायक दीनता के मार्ग में नहीं भटकूँगा। [अपनी इ
निस्तेज लोगों की तरह किसी की ख़ुशामद नहीं करूँगा। क्योंकि] ख़ु
गये मनुष्य से अति सम्मान के साथ अपनी चाही चीज़ मिलने पर भी व
की है। अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि विषय-भोग छोड़कर मोक्ष

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, भारी दुःख से पछतावा करते हुए राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री की ओर देखकर कहने लगे—रानियो, तुम माता अम्बिका, भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, माता सत्यवती, बन्धु-वर्ग, पुरवासी-प्रजा, व्रतधारी ब्राह्मण और अन्यान्य प्रधान कौरवों से मेरा नमस्कार कह-कर कहना कि पाण्डु ने संन्यास ले लिया।



स्वामी के ये वचन सुनकर कुन्ती और माद्री ने समझा कि पाण्डु ने सचमुच संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है। तब उन्होंने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, संन्यास के सिवा ऐसा भी और आश्रम है जिसको ग्रहण करके आप हम धर्म-पत्नियों के साथ तप कर सकते हैं। उसमें शरीर-त्याग का महाफल-दायक धर्म प्राप्त करने से आप स्वर्ग के भी अधिकारी होंगे। हम दोनों भ
करके काम-सुख त्यागकर पति की गति पाने के लिए तप करेंगी। महाराज,
कर संन्यास ले लेंगे तो हम अभी अपनी जान दे देंगी।

पाण्डु ने कहा—यदि तुमने ऐसा ही विचार कर लिया है तो अ
करने के लिए तुम भी मेरे साथ रहो। मैं अपने पिता वेदव्यास की अव
को ग्रहण करूँगा। विषय-सुख और राजसी भोगों को छोड़कर कठोर त
पहनूँगा, फल-मूल खाकर वनों में विचरूँगा। साँझ-सवेरे नहा करके हव
आहार करके अपने शरीर और इन्द्रियों को क्षीण कर डालूँगा। एक कपड़ा
लूँगा। जटा धारण करूँगा। जाड़ा, हवा, घाम, सब सहूँगा। भूख और
कठोर तप से शरीर को सुखा डालूँगा एकान्त में रहकर ब्रह्म का विचा

या पके हुए फल खाकर ज़िन्दगी बिताऊँगा। वन के फल-मूल, जल और स्तुति आदि के द्वारा देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करूँगा। वानप्रस्थ तपस्वी भी मेरे आचरण से सन्तुष्ट होंगे। किसी का अप्रिय नहीं करूँगा। गृहस्थों की कौन कहे, वानप्रस्थों का भी संग नहीं करूँगा। जब तक यह शरीर न छूटेगा तब तक इसी तरह वानप्रस्थ संन्यास के उत्तरोत्तर कठिन नियमों का पालन करता हुआ तप करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यों कहकर पाण्डु ने अपने मणि-मुकुट, चूड़ामणि, अङ्गद, कुण्डल, बहुमूल्य वस्त्र और दोनों स्त्रियों के सब गहने ब्राह्मणों को देकर उनसे कह दिया कि आप लोग हस्तिनापुर में जाकर कह दें कि पाण्डु अर्थ, काम, सुख और परम प्रिय विषयों का अनुराग छोड़कर दोनों रानियों के साथ वनवासी हो गये हैं।

पाण्डु के ये वचन सुनकर उनके साथ रहनेवाले ब्राह्मण और अन्यान्य अनुचर हाहाकार करके विलाप करने लगे। वह सब धन लेकर गर्म आँसू बहाते हुए सब लोग राजा पाण्डु को वन में छोड़कर हस्तिनापुर में आये। उन्होंने धृतराष्ट्र से सब हाल कहा। सब धन भी दे दिया। उनसे सब वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्र दुःख के वेग से व्याकुल हो उठे और पाण्डु के लिए शोक करने लगे। भाई के शोक के मारे, उन्हीं की चिन्ता में, धृतराष्ट्र को न सोना अच्छा लगता था, न कहीं बैठना अच्छा लगता था और न किसी सुख-भोग को उनका जी चाहता था।

इधर फल-मूल खाकर रहनेवाले पाण्डु दोनों पत्नियों के साथ नागशत नाम के पहाड़ पर गये। वहाँ कुछ दिन रहकर चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय पहाड़ को लाँघकर वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। महर्षि, सिद्ध, विद्याधर आदि, सङ्कट के समय, उनकी रक्षा करते थे। वे अच्छे और बीहड़, सभी तरह के स्थानों में जाते और रहते थे। वहाँ से इन्द्रद्युम्न सरोवर और हंसकूट पर्वत को लाँघकर महाराज पाण्डु शतश्रृङ्ग पर्वत पर पहुँचे। वहाँ वे जमकर तप करने लगे।

एक सौ इक्कीस अध्याय

पाण्डु का पुत्र पाने के लिए ऋषियों से सलाह करना और

पुत्र उत्पन्न करने के लिए कुन्ती से कहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शतश्रृङ्ग पहाड़ पर तप कर रहे पराक्रमी पाण्डु को सिद्ध और चारण लोग प्यार की दृष्टि से देखने लगे। गुरुजन की सेवा करके, अहङ्कार छोड़कर, आत्म-संयम के साथ जितेन्द्रिय बनकर पाण्डु ने स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वनवासी मुनियों में से कोई उन्हें भाई और कोई सखा उनका आदर करने लगा

अवस्था में बड़े कोई-कोई तपस्वी अपने पुत्र की तरह उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते थे। बहुत दिनों में तपोबल से निष्पाप होकर महाराज पाण्डु साक्षात् ब्रह्मर्षि के तुल्य हो गये।

एक दिन अमावस थी। उस दिन सब ऋषि लोग एकत्र होकर ब्रह्मा के दर्शन करने को गये। उनको जाते देखकर पाण्डु ने पूछा—आप लोग कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा—आज ब्रह्मलोक में अनेक महात्मा, देवता, ऋषि, पितृगण आदि का समागम होगा। हम वहीं ब्रह्मा के दर्शनों को जा रहे हैं।

यह सुनकर स्वर्ग जाने की इच्छा से पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे। उनको पीछे आते देख ऋषियों ने कहा—राजन्, हम लोग कई बार गये-आये हैं, इससे हमको मालूम है कि इस पर्वत के ऊपरी हिस्से में क्रमशः अनेक दुर्गम स्थान हैं। आगे चलकर सैकड़ों विमानों से शोभित और गाने-बजाने के शब्दों से परिपूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराओं की क्रीड़ा-भूमि है। उसके आगे कुबेर के सम और विषम भूमि से युक्त बाग़ हैं। मार्ग में बड़ी-बड़ी नदियाँ और भयानक पर्वतों की कन्दराएँ हैं। जगह-जगह पर ऐसे स्थान हैं जिनमें नित्य बर्फ़ जमी रहती है। वहाँ न वृक्ष हैं, न मृग, न पक्षी। कहीं-कहीं दुर्गम गिरि-कन्दराएँ हैं। वहाँ पर कोई मनुष्य नहीं जा सकता। मृग आदि पशुओं की कौन कहे, पक्षी भी उन स्थानों में नहीं जा सकते। केवल वायु, सिद्ध और महर्षि आदि वहाँ जा सकते हैं। आपकी दोनों स्त्रियाँ राजाओं की कन्या हैं। ऐसे दुर्गम स्थान में जाने से उन्हें अवश्य कष्ट होगा। इस कारण आप न चलिए।

यह सुनकर पाण्डु ने कहा—हे महाभाग ऋषियो, जिसके सन्तान नहीं वह मनुष्य स्वर्ग में नहीं जा सकता। उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है। मेरे सन्तान नहीं है। इसलिए दुःखित चित्त से मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि मैं पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से अपने को उऋण नहीं कर सका; इस कारण मेरा शरीर न रहने पर मेरे पितर स्वर्ग से भ्रष्ट होंगे ही। मनुष्य जब उत्पन्न होता है तब उस पर देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों का ऋण होता है। इस कारण उन सबका ऋण चुकाना ही हर एक मनुष्य का धर्म और कर्त्तव्य है। धर्मात्माओं का कहना है कि ठीक समय पर जो कोई इन ऋणों को नहीं चुकाता उसकी सद्गति नहीं होती। यज्ञ करके देवताओं का ऋण, वेद पढ़कर और तप करके ऋषियों का ऋण, पुत्र उत्पन्न करके पितरों का ऋण और सब प्राणियों पर दया करके मनुष्यों का ऋण चुकाया जाता है। मैं धर्मपूर्वक देवता, ऋषि और मनुष्यों के ऋण से छुटकारा पा चुका हूँ; केवल पितरों का ऋण चुकाना है। यही मुझे चिन्ता है कि पितरों का ऋण किस तरह चुकाऊँगा। कृपा करके आप लोग मुझको बता दीजिए कि जैसे अपने पिता की स्त्री में महर्षि वेदव्यास के द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ वैसे ही मेरी स्त्री में किसी तरह पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं या नहीं?



...ड्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर
चलने लगे।—पृ० २६२



जानपदी और शरद्वान् ।—पृ० २८८

ऋषियों ने कहा—धर्मात्मा महाराज, हम लोग दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं कि आपके कल्याणकारी निष्पाप देवतुल्य पुत्र उत्पन्न होंगे। इस समय आप देव-दत्त पुत्रों को प्राप्त करने के लिए यत्न कीजिए। बुद्धिमान् पुरुष स्थिर चित्त से कार्य करके शुभ फल प्राप्त करते हैं। हमको आपके पुत्र उत्पन्न होने की सफलता प्रत्यक्ष देख पड़ती है। इसलिए आप इस विषय में उपाय कीजिए। आपको अवश्य कल्याणदायिनी सन्तान प्राप्त होगी।

पाण्डु जानते थे कि ऋषि-रूप मृग के शाप से मैं स्वयं पुत्र उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहा। इस कारण, ऋषियों के वचन सुनकर, वे तरह-तरह की चिन्ता करने लगे। धर्म-पत्नी यशस्विनी कुन्ती को एकान्त में बुलाकर पाण्डु कहने लगे—कुन्ती, हमारे कोई सन्तान नहीं है। इसलिए आपद्धर्म के अनुसार तुम पुत्र उत्पन्न करने का यत्न करो। धर्म के जानकार पुरुषों का कहना है कि त्रिलोक में एकमात्र पुत्र से ही सद्गति होती है। यज्ञ, दान, तप या नियमपूर्वक व्रत के आचरण से भी सन्तान-हीन पुरुष पवित्र नहीं हो सकता। मैं सन्तान-हीन हूँ, इस कारण सद्गति नहीं पा सकता। [यही सोचकर मैंने पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देने का निश्चय कर लिया है।] प्रिये, मैं पहले एक मृग को मारकर बड़ा निठुर काम कर चुका हूँ। उस मृग-रूपी ऋषि-कुमार के शाप से मैं स्वयं पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता। धर्म-शास्त्र में बारह प्रकार के पुत्र कहे हैं। उनमें से पहले के छः प्रकार के पुत्र बाप-दादे के धन का हिस्सा पा सकते हैं और पिछले छः प्रकार के पुत्र नहीं पा सकते। वे पुत्र ये हैं—(१) औरस, अर्थात् धर्म-पत्नी के गर्भ से अपने वीर्य्य से उत्पन्न, (२) प्रणीत, अर्थात् अन्य उत्तम व्यक्ति के द्वारा अपनी स्त्री में उत्पन्न, (३) परिक्रीत, अर्थात् वीर्य का मूल्य (धन) देकर दूसरे के द्वारा अपनी स्त्री में उत्पन्न कराया हुआ, (४) पौनर्भव, अर्थात् अपने मर जाने पर विधवा भार्या में दूसरे से उत्पन्न, (५) कानीन, अर्थात् अपनी ब्याही स्त्री में उसके क्वाँरेपन में ही उत्पन्न, (६) कुण्ड, अर्थात् मनमाना आचरण करनेवाली स्त्री में उत्पन्न, (७) दत्तक, अर्थात् गोद लिया हुआ, (८) क्रीत, अर्थात् दाम देकर ख़रीदा हुआ, (९) उपक्रीत, अर्थात् पाला हुआ, (१०) आपसे आया हुआ, अर्थात् "मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा" यह कहकर स्वयं उपस्थित, (११) ज्ञातिरेतासहोढ़, अर्थात् भाई आदि सजातीय के वीर्य से गर्भवती स्त्री से ब्याह कर लेने पर ब्याह के बाद उत्पन्न और (१२) हीनयोनिधृत, अर्थात् निकृष्ट जाति की स्त्री के गर्भ में उत्पन्न किया हुआ। हीनयोनिधृत से ज्ञाति-रेतासहोढ़, उससे आप आया हुआ, उससे उपक्रीत, उससे क्रीत, उससे दत्तक, उससे कुण्ड, उससे कानीन, उससे पौनर्भव, उससे परिक्रीत, उससे प्रणीत और उससे औरस पुत्र श्रेष्ठ है। औरस न हो तो प्रणीत, प्रणीत न हो तो परिक्रीत;—इसी क्रम से उत्तरोत्तर ग्राह्य हैं। पुत्र न होने की अवस्था के आपत्काल में स्त्रियाँ उत्तम पुरुष देवर से भी पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं। मनु ने कहा है कि मनुष्य अपने सिवा अन्य के वीर्य से भी शुभ फल-दायक उत्तम पुत्र उत्पन्न करा

सकते हैं। मैं स्त्री-सङ्ग न कर सकने के कारण सन्तान उत्पन्न नहीं
आज्ञा देता हूँ कि तुम मेरे समान या मुझसे श्रेष्ठ किसी व्यक्ति से
इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाला शरदण्ड की स्त्री का उपाख्यान
वीर-पत्नी शरदण्ड की स्त्री पुत्र उत्पन्न करने के लिए, पति की
स्नान करके रात को चौराहे पर खड़ी हुई थी। इसी बीच मे



निकले। रानी ने उनसे पुत्र माँगा। ब्राह्मण ने स्वीकार कर लिय
करके अग्नि में हवन किया और उस दिन उसी ब्राह्मण से सहवास कि
आदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। हे सुन्दरी, वैसे ही तुम
आज्ञा से किसी श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण से प्रार्थना करो।

एक सौ बाईस अध्याय

राजा व्युषिताश्व की कथा

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, पाण्डु की ये बातें सुनकर कु
मर्म को जानते हैं। आपको मेरे लिए ऐसी आज्ञा देनी उचित नहीं
हे कमल-नयन, मैं आपके सिवा और किसी पुरुष को नहीं जानती।
लिए आपको ही मेरे गर्भ से पुत्र पैदा करना चाहिए मैं आप

ही मुझमें सन्तान उत्पन्न कीजिए। मैं आपके सिवा अन्य पुरुष का सङ्ग मन से सकती। और, पृथ्वी पर आपसे श्रेष्ठ पुरुष ही और कौन है? हे धर्मज्ञ, इसी क पुराण-वर्णित कथा सुन रक्खी है; उसे कहती हूँ, सुनिए।

समय में पुरुवंश में उत्पन्न व्युषिताश्व नाम के एक धर्मात्मा राजा थे। उनके यज्ञ षि-गण-सहित इन्द्र स्वयं सभा-स्थल में आये। उन्हें इतना सोम-रस पिलाया गया ा उठे। ब्राह्मण लोग यथेष्ट दक्षिणा पाकर बहुत प्रसन्न हुए। देवताओं और स्वयं सदस्य होकर यज्ञ का कार्य कराया। शिशिर ऋतु के उपरान्त सूर्य जैसे और और तेजस्वी हो उठते हैं वैसे ही यज्ञ के उपरान्त राजा व्युषिताश्व भी अमानुषिक ाये। उनमें दस हाथियों के समान बल था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करके अपने र पराक्रम से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर के सब राजाओं को जीतकर वश में

पुराने इतिहास को जाननेवाले लोगों का कहना है कि यशस्वी व्युषिताश्व ने स पृथ्वी को जीतकर—पिता जैसे अपने सगे पुत्रों की रक्षा करता है वैसे ही—सब ा का पालन किया; यज्ञ करके ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन और अनेक रत्न दिये; त्यग्निष्टोम आदि यज्ञ करके उनमें सोम-लता का रस बहुत पिलाया।

न्, काक्षीवान् राजा की कन्या भद्रा व्युषिताश्व की रानी थी। वह बहुत ही सुन्दरी ा प्यारी थी। स्त्री का पति पर और पति का स्त्री पर असीम अनुराग था। बेहद



स्त्री-सङ्ग करने के कारण अन्त को राजा क्षयी रोग के पञ्जे में फँस गये और थोड़े ही समय में सूर्य के समान अस्त हो गये। हे पुरुष-श्रेष्ठ, रानी भद्रा के कोई सन्तान न हुई थी। दुःख के मारे विलाप करती हुई वह [मरे हुए पति को पुकार-पुकारकर] कहने लगी—हे धर्मज्ञ, स्वामी के बिना स्त्री का जीवन बिलकुल ही निष्फल स्त्री के स्वामी नहीं उसके लिए सब दुःख ही दुःख है। उस अभागिन को जीवन का ही मिलता। पति के मरने पर स्त्री का मर जाना ही अच्छा होता है। इसलिए मैं सती हो जाऊँगी आप प्रसन्न हूजिए, मुझे अपने साथ ले चलिए अब आप

यम-लोक से लौटकर नहीं आ सकते; इसलिए मैं छाया की तरह आपके पीछे-पीछे जाऊँगी। समतल या ऊँची-नीची जगह पर आपके साथ चलने में मुझे कुछ कष्ट न होगा। मैं कहीं पर आपको छोड़कर लौटने का विचार न करूँगी। आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। आपको प्रसन्न रखने में लगी रहूँगी। हे कमल-नयन, आज से हृदय सुखानेवाले अनेक कष्ट मुझे सहने पड़ेंगे। दिन-रात तरह-तरह की चिन्ताएँ सताया करेंगी। जान पड़ता है, मैंने पहले जन्म में हिले-मिले हुए दो मित्रों को या पति और पत्नी को जुदा कर दिया है; उसी पाप के फल से मुझ अभागिन को आपके वियोग का यह दुःख प्राप्त हुआ है। जो पापिन पति के न रहने पर घड़ी भर भी जीती है वह दुःख सहती हुई पृथ्वी पर नरक की यन्त्रणा भोगती है। राजन्, आज से मैं कुशों की सेज पर सोकर दुःख उठाकर आपके दर्शन पाने का उपाय किया करूँगी। नाथ, मुझ अभागिन को एक बार दर्शन दो। स्वामी, मैं इस प्रकार करुण स्वर से विलाप कर रही हूँ।

कुन्ती कहती हैं—महाराज, स्वामी की लाश से लिपटकर भद्रा इस तरह विलाप कर रही थी; इसी समय उसे आकाश-वाणी सुन पड़ी—भद्रा, तुम उठो और घर जाओ। मैं तुमको वर देता हूँ कि मैं तुम्हारे गर्भ से पुत्र उत्पन्न करूँगा। सुन्दरी, ऋतु-स्नान करके आठवीं या चौदहवीं रात को तुम मेरे इस शरीर के साथ पलँग पर सोना।

व्युषिताश्व की रानी भद्रा को आकाश-वाणी सुनकर कुछ धीरज हुआ। उसने ऋतु-स्नान के उपरान्त पूर्वोक्त समय आने पर, पुत्र की इच्छा से, पति की आज्ञा का पालन किया। उसी मृत देह के सङ्ग से गर्भ रहा और रानी के—तीन शाल्व और चार मद्र,—सात पुत्र उत्पन्न हुए। राजन्, आप में भी तपो-बल और योग-बल है। आप भी उसी तरह मेरे गर्भ से मानस पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं।

एक सौ तेईस अध्याय

श्वेतकेतु-कृत सामाजिक मर्यादा के स्थापन का वर्णन। पाण्डु का
पुत्र उत्पन्न करने के लिए फिर कुन्ती को आज्ञा देना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, धर्मज्ञ महात्मा पाण्डु कुन्ती के ये वचन सुनकर फिर उनसे कहने लगे—कुन्ती, तुमने जो व्युषिताश्व का वृत्तान्त कहा सो ठीक है। उन्होंने ऐसा ही किया था। वे साक्षात् देवता थे। सुन्दरी, सुनो; ऋषियों ने जिस प्राचीन धर्म का वर्णन किया है सो मैं तुमसे कहता हूँ। मैंने सुना है कि पूर्वसमय में सब स्त्रियाँ स्वाधीन थीं। पर्दा न था। वे चाहे जिसके साथ रह सकती थीं। वे घूमती-फिरती थीं; स्वजन उन्हें रोक न

रहने पर भी स्त्रियाँ व्यभिचार करती थीं; पर वह उनका काम दोष न । क्योंकि उस समय का सामाजिक नियम ही ऐसा था। काम और क्रोध शु-पक्षी आदि इस समय भी उसी प्राचीन धर्म के अनुसार चलते हैं। ऋषि प्रमाण-सिद्ध समझकर मानते हैं। उत्तर-कुरु देश में अब तक यही धर्म प्रच- यह धर्म अत्यन्त प्राचीन और स्त्रियों के अनुकूल है। कुछ ही दिन हुए, उठा दिया गया है। जिसने जिसलिए इस धर्म को उठा दिया है, सो मैं तुमसे कहता हूँ; सुनो।

लक नाम के एक महर्षि थे। उनके पुत्र महातपस्वी श्वेतकेतु हुए। कमल- केतु ने क्रोधवश होकर इस व्यभिचार की रीति को दूषित ठहराकर पृथ्वी ौर एक स्त्री के लिए एक ही पति की मर्यादा स्थापित कर दी है। उनके कोप न लो।

श्वेतकेतु ऋषि अपनी माता के पास बैठे थे। उनके पिता भी वहीं पर थे। ाह्मण आकर उनकी माता का हाथ पकड़कर कहने लगा—युवती, तुम मेरे साथ ाह्मण मानों बलपूर्वक श्वेतकेतु की माता को लेकर चल दिया। इससे श्वेतकेतु को बड़ा क्रोध आया। श्वेत- केतु को कुपित देखकर उनके पिता उद्दालक ने कहा— बेटा, क्रोध न करो। अत्यन्त प्राचीन काल से यह धर्म चला आ रहा है। संसार में सभी वर्णों की स्त्रियाँ इस विषय मे स्वाधीन हैं। सब मनुष्य अपने वर्ण की स्त्रियों से गाय-बैल के समान आचरण करते हैं। जो जिससे चाहे विहार कर सकता है। उद्दालक ने इस तरह पुत्र को समझाया



ने उस धर्म का अनुमोदन न किया। कुपित श्वेतकेतु ने स्त्री और पुरुष के ैिक नियम बना दिया कि एक स्त्री एक ही पुरुष की होकर रहे। उन्होंने ा अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष का सङ्ग करेगी उसे गर्भ-हत्या का

जैसा घोर पाप होगा। यह दुःखदायक होगा। जो पुरुष पतिव्रता स्त्री से रमण करेगा, उसे भी यही पाप लगेगा। और, जो पत्नी पु हुई स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं करेगी उसे भी यही पात होकर श्वेतकेतु ने मनुष्यों के लिए यह मर्यादा बाँध दी है। [बुरा और पाप समझा जाने लगा है। किन्तु अन्यान्य प्राणी अ अनुसार चलते हैं।] सुना है कि राजा कल्मापपाद की रानी मद उनके भले के लिए, वशिष्ठ ऋषि से अश्मक नाम का एक पुत्र उत्पन्न जाने दो; कुरुवंश चलाने के लिए वेदव्यास ने जिस तरह हम तीनों सो तो तुम्हें मालूम ही है। इसलिए प्रिये, तुम इन सब कारणों पर विचार करके मेरी इस धर्म-सङ्गत आज्ञा का पालन करो। प्राचीन धर्मज्ञ लोगों का कहना है कि स्त्री जब ऋतु-स्नान करे तब उसे अवश्य स्वामी का सहवास करना चाहिए; इसके सिवा और अवसरों पर उसे स्वाधीनता प्राप्त है। राजनन्दिनी, स्वामी की आज्ञा धर्म-विरुद्ध भी हो तो उसका पालन करना हर एक स्त्री का कर्त्तव्य है। ख़ास कर जब पति मेरी तरह, पुत्र उत्पन्न करने में, असमर्थ हो किन्तु पुत्र की इच्छा रखता हो, तब तो स्त्री को कुछ कहना ही न चाहिए। तुम्हें राज़ी करने के लिए मैं हाथ जोड़ता हूँ। तुम मेरी



आज्ञा से मुझसे श्रेष्ठ किसी तपस्वी के द्वारा गुणी सन्तान उत्पन्न करो मैं पुत्रवाले पुरुषों की अच्छी गति पाऊँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि शत्रुदमन महाराज पाण्डु के ये करने के लिए कुन्ती ने कहा—महाराज, जब मैं पिता के यहाँ थी किया करती थी। एक दिन धर्म के गुप्त रहस्य को जाननेवाले महर्षि दुर्वासा आये। मैंने बड़े यत्न से उनकी सेवा की। उससे चार-मन्त्र बताकर उन्होंने मुझसे कहा—'राजकुमारी, यह मन्त्र पढ़ आवाहन करोगी वह अकाम हो चाहे सकाम की शक्ति

तुम उस देवता के द्वारा पुत्र प्राप्त कर सकोगी।' स्वामी, पिता के दुर्लभ वरदान मैंने पाया था उसके सफल होने का यही समय है। मैं केवल आपकी आज्ञा चाहती हूँ कि पुत्र की इच्छा से किस देवता को बुलाऊँ।



पाण्डु ने कहा—सुन्दरी, तुम अभी इसका उपाय करो। प्रिये, तुम धर्मदेव को बुलाओ। तीनों लोकों में वही सबसे बढ़कर पुण्यरूप हैं। उनके सङ्ग से पुत्र उत्पन्न करने-कराने में तुम्हें और मुझे किसी तरह का अधर्म नहीं हो सकता। लोग भी यही समझेंगे कि धर्म से पुत्र उत्पन्न हुआ है। तुम धर्म के द्वारा जो पुत्र उत्पन्न करोगी वह कुरुवंश में प्रधान धर्मात्मा होगा। अधर्म की ओर उसकी रुचि कभी न होगी। इसलिए तुम आचार-पूर्वक अभिचार-मन्त्र के द्वारा देवश्रेष्ठ धर्म का आवाहन करो।

कहते हैं—महाराज, पति की आज्ञा स्वीकार करके कुन्ती ने प्रदक्षिणा

एक सौ चौबीस अध्याय

युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, गान्धारी का गर्भ जब एक वर्ष का
ने, सन्तान की इच्छा से, धर्मदेव को बुलाया।

कुन्ती शीघ्र ही विधिपूर्वक पूजन करके धर्म को बुलाने के लिए दुर्वासा के दिये मन्त्र को जपने लगीं। मन्त्र की शक्ति से उसी समय, सूर्य के समान प्रकाशमान श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, धर्मदेव कुन्ती के पास आ गये। उन्होंने हँसकर कुन्ती से कहा—रानी, तुम मुझसे क्या चाहती हो?



कुन्ती ने लजीली मुसकान के साथ कहा—देव, मैंने पुत्र की इच्छा से आपको बुलाया है। इसके पश्चात् कुन्ती ने योग-मूर्ति धारण किये हुए धर्म से सहवास किया। कुन्ती के ग

इसके उपरान्त पञ्चमी* के दिन दोपहर को अष्टम अभिजित् मुहूर्त्त
उत्पन्न हुआ। उस दिन सोमवार और ज्येष्ठा नक्षत्र था। पुत्र का जन्म हो
हुई—यह बालक पृथ्वी पर धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ, पराक्रमी, सत्यवादी, ब्र
महाराज कहलावेगा। पाण्डु के इस त्रिलोक-प्रसिद्ध पुत्र का नाम युधिष्ठिर

ऐसे धार्मिक पुत्र को पाकर पाण्डु ने फिर कुन्ती से कहा—प्रिये
क्षत्रिय के लिए बल ही मुख्य है। इसलिए तुम एक बली पुत्र भी उत्
आज्ञा पाकर कुन्ती ने उसी तरह वायु को बुलाया। मृग पर सवार वायुदे
से पूछा—मुझसे क्या चाहती हो? लज्जा से सिर झुकाये हुए कुन्ती ने
देव-श्रेष्ठ, मैं एक भारी डीलडौलवाला, महाबली और सबके घमण्ड को
आपसे माँगती हूँ। 'तथास्तु' कहकर कुन्ती की इच्छा पूरी करके वायुदेव स
उनके सहवास से कुन्ती ने यथासमय भीम-पराक्रमी भीमसेन को उत्पन्न किय

भीमसेन का जन्म होने पर आकाश-वाणी हुई—"यह बालक सब
प्राणियों से बढ़कर होगा।" महाराज, अब और भी एक अद्भुत घटना हु

* यह योग प्रायः क्वार सुदी पञ्चमी को होता है

क दिन बालक भीमसेन अपनी माता की गोद में सो रहे थे। अचानक
ाकर गरजा। बाघ के डर से कुन्ती एकाएक उठकर खड़ी हो गईं,



इससे भीमसेन गोद से लुढ़ककर शिला पर गिर पड़े। उनके वज्र-समान अत्यन्त दृढ़ शरीर की चोट से वह पहाड़ी चट्टान चूर-चूर हो गई। यह देखकर पाण्डु को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजन्, जिस दिन भीमसेन पैदा हुए उसी दिन पहले दुर्योधन उत्पन्न हो चुका था।

भीमसेन के उत्पन्न हो चुकने पर पाण्डु मन में सोचने लगे कि किस तरह मेरे सब पुरुषों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो। मनुष्यों में से कोई दैव-बल से और कोई अपने पौरुष से संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। दैव का बल तो यथासमय आप ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए पौरुष का होना ही आवश्यक है। सुना है, इन्द्र सब
उनका उत्साह, बल, वीर्य और प्रभाव अपार है। अब उन्हीं को तप
ाहापराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहिए। वे जो पुत्र देंगे वह सबमें श्रेष्ठ
मे मनुष्य, देवता, गन्धर्व आदि सबको परास्त करेगा। मैं मन, वाणी
-देव इन्द्र की उपासना करूँगा। महाराज, कुरुश्रेष्ठ पाण्डु ने यों विचार
सलाह की। कुन्ती को एक वर्ष तक शुभदायक व्रत धारण करने की
ामपूर्वक एक पैर से खड़े होकर उग्र तप करने लगे। सूर्योदय से सूर्यास्त
आराधना करते हुए सूर्य के ताप को सहते थे।

ाने पर इन्द्र ने आकर कहा—पाण्डु, मैं प्रसन्न हूँ। तुमको मैं एक
ा। वह गो-ब्राह्मण-पालक और बन्धु-बान्धवों का हितकारी होगा तथा
वह अपने सब शत्रुओं का नाश करेगा।

ये। पाण्डु ने कुन्ती से कहा—सुन्दरी, इन्द्र सन्तुष्ट होकर कह गये
के योग्य तुमको एक अलौकिक कर्म करनेवाला, यशस्वी, शत्रुनाशन,
ान तेजस्वी पुत्र देंगे प्रिये, अब कोई चिन्ता नहीं तुम क्षत्रिय-

तेज का आधार, कामकाजी, दुर्जय और अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न करोगी। इन्द्र हम पर प्रसन्न हुए हैं। अब तुम उनका आवाहन करो।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, स्वामी की आज्ञा से यशस्विनी कुन्ती ने मन्त्र पढ़कर इन्द्र का आवाहन किया। इन्द्रदेव आ गये। उन्होंने कुन्ती की इच्छा पूरी की। कुन्ती के गर्भ से यथासमय अर्जुन उत्पन्न हुए। उनके उत्पन्न होते ही गम्भीर नाद से आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित करती हुई आकाश-वाणी सुन पड़ी—हे कुन्ती, तुम्हारा यह बालक कार्त्तवीर्य और भगवान् शङ्कर के समान पराक्रमी होकर युद्ध में इन्द्र के समान यश पावेगा। विष्णु को उत्पन्न करके अदिति जैसे सुखी हुई थीं वैसे ही इस बालक से तुमको भी आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारा यह पुत्र अर्जुन नाम से प्रसिद्ध होकर मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशी, करूष आदि देशों और वंशों के राजाओं को जीतेगा और कुरुकुल की राज-लक्ष्मी को सुरक्षित रक्खेगा; खाण्डव वन जलवाकर अनेक प्राणियों की चर्बी से अग्निदेव को तृप्त और सन्तुष्ट करेगा; राजाओं को जीतकर बड़े भाई युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञ करावेगा। कुन्ती, यह विष्णु के समान पराक्रमी और परशुराम के समान बली योद्धा होगा। यह महायशस्वी बालक त्रिलोक में अद्वितीय पौरुष रखनेवाला होगा। यह महादेव शङ्कर से युद्ध करके उन्हें सन्तुष्ट करेगा और उनसे पाशुपत अस्त्र पावेगा; इन्द्र की आज्ञा से निवातकवच नाम के दैत्यों को मारकर सब दिव्य अस्त्रों को प्राप्त करेगा। तुम्हारे कुल के नष्टप्राय सौभाग्य का उद्धार इसी के द्वारा होगा।

कुन्ती सौर में ही थीं जब उन्हें ऐसी अद्भुत आकाश-वाणी सुन पड़ी। शतशृङ्ग पर्वत के निवासी तपस्वी भी यह आकाश-वाणी सुनकर परम प्रसन्न हुए। देव, महर्षि और इन्द्र-सहित सब देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। आकाश में नगाड़े बजने लगे। देवता फूल बरसाने लगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन की अभ्यर्थना के लिए सब देवता, ऋषि आदि आकाश में और पृथ्वी पर आकर जमा हुए। कद्रू के पुत्र नाग, विनता के पुत्र गरुड़ और अरुण, गन्धर्व, अप्सराएँ, प्रजापति और सप्तऋषि आये। भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ आये। सूर्य के अस्त होने पर आकाशमण्डल में उदय होनेवाले महर्षि अत्रि भी उपस्थित हुए। फिर मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष प्रजापति आये। दिव्य वस्त्र, गहने और अद्भुत वैजयन्ती माला पहने अप्सराएँ अर्जुन के यश को गाती हुई नृत्य करने लगीं। महर्षिगण मङ्गल के लिए स्वस्त्ययन-मन्त्र पढ़ने लगे। गन्धर्वराज तुम्बुरु, भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्ज्जन्य, कलि, नारद, ऋत्त्वा, बृहत्त्वा, बृहक, कराल, ब्रह्मचारी, बहुगुण, सुवर्ण, विश्वावसु, भूमन्यु, सुचन्द्र, शरु और मधुर कण्ठ से उत्तम गाने में प्रसिद्ध हाहा-हूहू नाम के गन्धर्व वहाँ पहुँचकर गाने लगे उनके साथ ही सुन्दर कपड़ों और गहनों से सजी हुई बड़ी

बड़ी आँखोंवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी अप्सराएँ गाने-बजाने और नाचने लगीं। [अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा,] अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुवपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारद्वती आदि अप्सराएँ नाचने और मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुञ्जिकस्थली, ऋतुस्थली, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, उम्लोचा, प्रम्लोचा और उर्वशी, ये ग्यारह स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सराएँ गाने लगीं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, पर्जन्य और विष्णु, ये बारहों आदित्य [पाण्डव की महिमा को बढ़ाते हुए] आकाश में आ गये। मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग, ये ग्यारह रुद्र भी आये। अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वेदेवा और साध्यगण भी वहाँ पर आ गये। कर्कोटक, वासुकि, कच्छप, कुण्ड, तक्षक आदि अनेकानेक तपोबलधारी महाबली क्रोधी साँप भी आये। विनता के पुत्र तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुण और आरुणि भी आये। ये सब देवगण आदि विमानों पर आकर पर्वत के जिस शिखर पर ठहरे उसे वनवासी सिद्ध ऋषियों के सिवा और कोई नहीं देख सका। तपस्वी ऋषिगण इस अद्भुत दृश्य को देखकर बहुत ही चकराये। तभी से वे पाण्डु के पुत्रों को पहले से भी अधिक आदर की दृष्टि से देखने लगे।

राजन्, इस घटना के बाद कुछ समय बीतने पर पाण्डु फिर पुत्र के लोभ में पड़कर कुन्ती को और एक पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देने लगे। तब पतिव्रता कुन्ती ने कहा—महाराज, पुत्रहीन होने की आपत्ति के समय में भी धर्मज्ञ पण्डितों ने इस तरह तीन ही बार पुत्र उत्पन्न करने की व्यवस्था दी है। चौबारा स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। चौथी बार पुत्र उत्पन्न करनेवाली स्त्री कुलटा कहाती है। यदि पाँचवीं बार ऐसा करती है तो वेश्या के तुल्य हो जाती है। आप विद्वान् हैं और सनातन धर्म को अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी पुत्र उत्पन्न करने के लिए चौथी बार क्यों ऐसी आज्ञा देने को तैयार हैं? भला आपको यह कैसी भ्रान्त धारणा हुई?

एक सौ पचीस अध्याय

नकुल और सहदेव का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, इस प्रकार कुन्ती और गान्धारी के पुत्र उत्पन्न होने पर एक दिन माद्री ने एकान्त में पाण्डु से कहा—प्रियतम, आप सम्भोग-सुख से वञ्चित हैं, इससे मुझको कुछ कष्ट नहीं है सम्मान के योग्य कुन्ती की अपेक्षा अपना कम आदर होने से भी

मुझे विशेष दुःख नहीं है। और गान्धारी के एक सौ पुत्र होने का हाल सुनकर भी मुझे वैसा खेद नहीं हुआ। मुझको तो बड़ा भारी दुःख यही है कि आपके पुत्र उत्पन्न करने के अयोग्य हो जाने के कारण कुन्ती और मैं दोनों ही पुत्र का मुँह नहीं देख सकती थीं—वास्तव में हम दोनों में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति है—सो इस समय भाग्यवश कुन्ती से आपके सन्तान हैं; [पर मेरे कोई पुत्र नहीं है।] यदि कुन्ती मुझ पर कृपा करें तो मैं भी पुत्र का मुँह देख सकती हूँ। ऐसा होने से आपका भी हित होगा। मैं स्वयं कुन्ती से इसके लिए प्रार्थना नहीं कर सकती; क्योंकि वे मेरी सौत हैं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके उनसे मुझे पुत्र दिलाने के लिए कहिए।

यह सुनकर पाण्डु ने कहा—माद्री, अब तक मैं नित्य इसी बारे में सोचा करता था; इसके सिवा और कोई चिन्ता मुझे न थी। किन्तु तुम इसके लिए राज़ी हो या न हो, यह सोचकर मैं तुमसे कुछ कह नहीं सका। इस समय तुम्हारी इच्छा मुझे मालूम हो गई। अब इसके लिए विशेष उपाय करूँगा। मुझे निश्चय है, कुन्ती मेरे कहे को कभी न टालेंगी।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद पाण्डु ने कुन्ती को एकान्त में बुलाकर कहा कि प्रिये, तुम प्रजा की मनोरथ-सिद्धि के लिए सन्तान उत्पन्न करके हमारे वंश को बढ़ाओ। ऐसा करोगी तो किसी न किसी पुत्र के वंश चलने से मेरे श्राद्ध-तर्पण का अभाव न होगा। इससे मेरे पूर्वजों को, तुमको, माद्री को और मुझे आनन्द होगा। अन्य कोई प्रयोजन न होने पर भी केवल कीर्त्ति फैलाने के लिए तुम पुत्र बढ़ाने का उपाय करो। रानी, इन्द्र ने त्रिलोकी की प्रभुता पाकर भी केवल यश की इच्छा से अनेक यज्ञ किये हैं। मन्त्रज्ञ ब्राह्मण भी दुष्कर तप करते हुए यश के लिए गुरु और देवता आदि की आराधना करते हैं। राजर्षियों तथा और-और ब्राह्मणों ने इसी उद्देश से मारण, उच्चाटन आदि के मन्त्रों का उच्चारण करके अनेक अतिनिष्ठुर कार्य भी किये हैं। इसलिए तुम पुत्रहीनता-रूप भयानक समुद्र में डूबी हुई माद्री को नाव की तरह उबार लो। यदि तुम्हारी कृपा से माद्री पुत्र पावेगी तो संसार में तुम्हारी कीर्त्ति फैल जायगी।

स्वामी के ये वचन सुनकर कुन्ती ने माद्री से कहा—बहन, तुम किसी देवता का ध्यान करो। उस देवता से उसी के अनुरूप पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा। माद्री ने खूब सोचकर अन्त में अश्विनी-कुमार देवों को स्मरण किया। स्मरण करते ही कुन्ती के मन्त्र के बल से वे देवता आ गये। उनके द्वारा माद्री के नकुल और सहदेव नाम के यमज (जोड़ा) पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पैदा होते ही आकाश-वाणी हुई—अश्विनी-कुमार देवों के ये दोनों पुत्र बली और बहुत ही सुन्दर होंगे। ये रूप और तेज में साक्षात् अश्विनी-कुमार से भी अधिक होंगे।

महाराज, इस प्रकार पाण्डु के पाँच पुत्र उत्पन्न होने पर शतशृङ्ग पर्वत पर रहनेवाले तपस्वियों ने जातकर्म, आदि संस्कार करके उन्हें स्नेह से शुभ आशीर्वाद दिये कुन्ती

नाम युधिष्ठिर, मँझले का भीमसेन और छोटे का अर्जुन रक्खा। माद्री के
ाकुल और छोटे का सहदेव रक्खा। पाँचों बालक दिनोंदिन बढ़ते हुए बल, वीर्य और पराक्रम से पूर्ण होने लगे। एक-एक वर्ष की अवस्था में वे पाँच-पाँच वर्ष के ऐसे जान पड़ते थे। देवकुमार-तुल्य तेजस्वी उन पुत्रों को देखकर पाण्डु को अपार आनन्द हुआ। पर्वत पर रहनेवाले ऋषि और उनकी स्त्रियाँ अत्यन्त आनन्दित होकर उन बालकों को प्यार करती थीं।



कुछ समय बीतने पर पाण्डु ने फिर कुन्ती से माद्री के पुत्र उत्पन्न होने के लिए उपाय करने को कहा। एकान्त में पाण्डु के यों कहने पर कुन्ती ने कहा—
है; उसने एक ही बार देवता का आवाहन करके दो पुत्र प्राप्त कर लिये।
ा कि अश्विनीकुमार-युगल को एक बार आवाहन करने से दो पुत्र मिलेंगे।
ायदा नहीं उठा सकी। अधिक पुत्र होने से माद्री मेरा अपमान भी कर
ुरी स्त्रियों की प्रकृति ही ऐसी होती है। इन्हीं कारणों से मैं आपसे यह
ा काम के लिए अब आप मुझसे न कहें।

वताओं से पाण्डु को पाँच पुत्र प्राप्त हुए। हैमवत पर्वत पर रहकर कुछ
ो, यशस्वी, शुभलक्षणयुक्त, चन्द्रमा के समान प्रिय-दर्शन, सिंह के समान
ारियों में श्रेष्ठ और देवताओं के समान पराक्रमी पाँचों पाण्डव बढ़कर इधर-
ाने लगे। वनवासियों और अन्यान्य तपस्वियों को उन बालकों के शुभ
ति देखने से आश्चर्य हुआ।

ा और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र जल में कमल की तरह थोड़े ही समय में बढ़-

---

एक सौ छब्बीस अध्याय

पाण्डु की मृत्यु और माद्री का सती होना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, वन में पाँचों पुत्रों के मनोहर मुख
राज पाण्डु का बाहु-बल मानों फिर नया हो उठा। वे फिर स्त्री-सहित इध
करते हुए घूमने लगे।

एक बार वसन्त ऋतु थी। चारों ओर वन में वसन्त की अनुपम
हुई थी। टेसू, तिलक, आम, चम्पा, नीम आदि अनेकानेक वृक्ष फूलों और
चारों ओर फूलों की सुगन्ध छाई हुई थी। जगह-जगह पर सरोवरों में सुन्दर

ऐसे कामोद्दीपन करनेवाले चैत-वैसाख के दिनों में एक दिन महारा
साथ वन में विचर रहे थे। वसन्त की शोभा निहारकर राजा के हृदय मे
हुआ। प्रसन्न चित्त से विचरते हुए देव-तुल्य पाण्डु के पास ही सुन्दर महीन कपड़े पहने माद्री टहल रही थी। कमल-नयनी माद्री की जवानी के सौन्दर्य को देखकर, जङ्गल में आग की तरह, राजा के हृदय में काम का वेग बढ़ा। एकान्त में अकेली माद्री को पाकर पाण्डु अपने को सँभाल न सके। कामवश विह्वल राजा ऋषि के शाप को भूल गये और माद्री को पकड़कर बल-पूर्वक अपनी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हुए। रानी शाप को याद करके डर से काँप उठी। माद्री ने यथाशक्ति राजा को रोकना चाहा। किन्तु राजा ने किसी तरह नहीं माना; माद्री को नहीं छोड़ा। राजन,



पाण्डु की आयु समाप्त हो चुकी थी; इसी से भावीवश कामान्ध होकर उन्हे
दिलाने पर भी उसकी परवा नहीं की। उनकी बुद्धि कालवश मोह को प्र
को उत्तेजित करके, प्राणों की गाहक बन गई।

महाराज, इस प्रकार स्त्री-सङ्ग करते ही धर्मात्मा पाण्डु की मृत्यु हो
उनकी लाश से लिपटकर बारम्बार ऊँचे स्वर से हाय हाय करती हुई विलाप क



एकान्त में अकेली माद्री को पाकर पाण्डु अपने को सँभाल न सके।—पृ० २७६